ऋषभदेव : एक परिशीलन

लेखक
परम श्रद्धेय पं० श्री पुष्कर मुनि जी महाराज
के सुशिष्य
देवेन्द्र मुनि शास्त्री 'साहित्यरत्न'

सन्मति ज्ञान-पीठ, आगरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषभदेव : एक परिशीलन

लेखक
परम श्रद्धेय पं० श्री पुष्कर मुनि जी म०
के सुशिष्य
देवेन्द्र मुनि शास्त्री, 'साहित्यरत्न'

श्री सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुस्तक :

ऋषभदेव : एक परिशीलन

भूमिका :

उपाध्याय अमर मुनि

लेखक :

श्री देवेन्द्र मुनि

प्रकाशक :

सन्मति ज्ञानपीठ

लोहामण्डी, आगरा-२

प्रथम संस्करण :

अप्रैल १९६७

मुद्रक :

श्री विष्णु प्रिंटिङ्ग प्रेस,

राजामण्डी, आगरा-२

मूल्य :

तीन रुपए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

आर्यसंस्कृति के आदिपुरुष भगवानऋषभदेव की जीवन-गाथा कला और संस्कृति, शिक्षा और साहित्य, धर्म और राजनीति का आदि-स्रोत है। आर्य संस्कृति का वह महाप्राण व्यक्तित्व दो युगों का सन्धि-काल है, जब अकर्म से जीवन में जड़ता छा रही थी और भोगासक्ति ने जीवन को निःसत्व बना रखा था, तब ऋषभदेव कर्म-युग के आदिसूत्रधार बने, अकर्म को कर्म की ओर प्रेरित किया, भोग को योग से परिष्कृत करने की कला सिखलाई। पुरुषार्थ जगा, कला का विकास हुआ, समाज की रचना हुई, राज्य शासन का निर्माण हुआ, और धर्म एवं संस्कृति की पावन रेखाएँ आकार पाने लगीं।

जैन, बौद्ध और वैदिक—तीनों परम्पराओं में भगवान ऋषभदेव की महिमा के स्वर प्रतिध्वनित होते सुनाई देते हैं और यह प्रतिध्वनि आर्य-संस्कृति की मौलिक एकता का अक्षय चिन्ह है। भले ही ऋषभदेव के विराट व्यक्तित्व को विभिन्न परम्पराओं ने विभिन्न दृष्टियों से देखा हो, किन्तु उससे उनकी महानता और सर्वव्यापकता में कोई अन्तर नहीं आता। विभिन्न दिशाओं में बसने वाले यदि हिमालय या सुमेरु के विभिन्न भागों को देखकर अपनी-अपनी दृष्टि से उसका वर्णन करें तो उससे हिमालय या सुमेरु की महान सत्ता में कोई अन्तर नहीं पड़ता, बल्कि उसकी सार्वदेशिकता का ही प्रमाण मिलता है।

आर्य संस्कृति के उस मूल पुरुष को, उनके जीवन-स्रोत की विभिन्न धाराओं में अवगाहन कर गहराई से समझने-परखने की आज अत्यन्त आवश्यकता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। हमें प्रसन्नता है कि परम श्रद्धेय पं० श्री पुष्कर मुनिजी महाराज के शिष्य उदीयमान साहित्यकार श्री देवेन्द्र मुनिजी शास्त्री ने इस दिशा में यह एक महनीय प्रयत्न किया है। उन्होंने अनेक ग्रन्थों का परिशीलन करके भगवान ऋषभदेव के महान कर्तृत्व को, जिस संक्षेप किन्तु प्रामाणिक और तुलनात्मक शैली से प्रस्तुत किया है, वह वस्तुतः अभिनन्दनीय ही नहीं, किन्तु अनुकरणीय भी है।

साथ ही अस्वस्थ होते हुए भी श्रद्धेय उपाध्याय श्री जी ने भगवान आदिनाथ के महाप्राण व्यक्तित्व के विचार-बिन्दु को नवीन दृष्टि-परिवेश में उपस्थित कर जो महत्वपूर्ण प्रस्तावना से ग्रन्थ की श्रीवृद्धि की है, उसके लिए भी हम उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञ हैं।

सन्मति ज्ञानपीठ के महत्वपूर्ण प्रकाशन आज साहित्य क्षेत्र में अत्यधिक आदर एवं गौरव प्राप्त कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि यह प्रकाशन भी हमारी उसी गौरवमयी परम्परा की एक कड़ी बनेगा। पाठक इसे अधिकाधिक अपनाकर हमारा उत्साह बढ़ायेंगे। इसी आशा के साथ....

मन्त्री

सन्मति ज्ञानपीठ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेखक की कलम से

●

भारतवर्ष के जिन महापुरुषों का मानव जाति के विचारों पर स्थायी प्रभाव पड़ा है उनमें भगवान् ऋषभदेव का प्रमुख स्थान है। उनके अनलोद्धत व्यक्तित्व और असाधारण व अभूतपूर्व कृतित्व की छाप जन-जीवन पर बहुत ही गहरी है। आज भी अनेकों व्यक्तियों का जीवन उनके निर्मल विचारों से प्रभावित है। उनके हृदयाकाश में चमकते हुए आकाशदीप की तरह वे सुशोभित हैं। जैन व जैनेतर साहित्य उनकी गौरव-गाथा से छलक रहा है। उनका विराट् व्यक्तित्व सम्प्रदायवाद, पंथवाद से उन्मुक्त है। वे वस्तुतः मानवता के कीर्तिस्तम्भ हैं।

भगवान् ऋषभदेव का समय भारतीय ज्ञात इतिहास में नहीं आता। उनके अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए आगम व आगमेतर प्राच्य साहित्य ही प्रबल प्रमाण है। जैन परम्परा की दृष्टि से भगवान् ऋषभदेव वर्तमान अवसर्पिणी काल के तृतीय आरे के उपसंहार काल में हुए हैं।[1] चौबीसवें तीर्थङ्कर भगवान् महावीर और ऋषभदेव के बीच का समय असंख्यात वर्ष का है।[2]

वैदिक दृष्टि से भी ऋषभदेव प्रथम सतयुग के अन्त में हुए हैं और राम व कृष्ण के अवतारों से पूर्व हुए हैं।[3]

जैन साहित्य में कुलकरों की परम्परा में नाभि, और ऋषभ का जैसा स्थान है, वैसा ही स्थान बौद्ध परम्परा में महासमन्त का है।[4] सामयिक परिस्थिति भी दोनों में समान रूप से ही चित्रित हुई है। सम्भवतः बौद्ध परम्परा में ऋषभदेव का ही अपर नाम महासमन्त हो ?

---

१. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
   (ख) कल्पसूत्र
२. कल्पसूत्र
३. जिनेन्द्र मत दर्पण भाग० १ पृ० १०
४. दीघनिकाय अग्गञ्ञसुत्त भाग–३
   (ख) जैन साहित्य का वृहद् इतिहास भाग० १ प्रस्तावना पृ० २२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषभदेव का चरित्र जिस प्रकार जैन और वैदिक साहित्य में विस्तार से चित्रित किया गया है, वैसा बौद्ध साहित्य में नहीं हुआ। केवल कहीं-कहीं पर नाम निर्देश किया गया है। जैसे धम्मपद की 'उसभं पवरं वीरं'[५] गाथा में अस्पष्ट रीति से ऋषभदेव और महावीर का उल्लेख हुआ है।[६] बौद्धाचार्य धर्म कीर्ति ने सर्वज्ञ आप्त के उदाहरण में ऋषभ और वर्द्धमान महावीर का निर्देश किया है और बौद्धाचार्य आर्य देव भी ऋषभदेव को ही जैन धर्म का आद्य-प्रचारक मानते हैं।

आधुनिक प्रतिभासम्पन्न मूर्धन्य विचारक भी यह सत्य तथ्य नि:संकोच रूप से स्वीकारने लगे हैं कि भगवान् ऋषभदेव से ही जैन धर्म का प्रादुर्भाव हुआ है।

डाक्टर हर्मन जेकोबी लिखते हैं कि इसमें कोई प्रमाण नहीं कि पार्श्वनाथ जैन धर्म के संस्थापक थे। जैनपरम्परा प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव को जैन धर्म का संस्थापक मानने में एक मत है। इस मान्यता में ऐतिहासिक सत्य की अत्यधिक सम्भावना है।[७]

प्रस्तुत प्रश्न पर चिन्तन करते हुए डाक्टर राधाकृष्णन् लिखते हैं कि "जैन परम्परा ऋषभदेव से अपने धर्म की उत्पत्ति का कथन करती है, जो बहुत ही शताब्दियों पूर्व हुए हैं। इस बात के प्रमाण पाये जाते हैं कि ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी में प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव की आराधना होती थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जैन धर्म वर्द्धमान महावीर और पार्श्वनाथ से भी बहुत पहले प्रचलित था।"

"यजुर्वेद में ऋषभदेव, अजितनाथ और अरिष्टनेमि इन तीनों तीर्थंकरों के नाम आते हैं। भागवत पुराण भी इस बात का समर्थन करता है कि ऋषभदेव जैन धर्म के संस्थापक थे।"[८]

---

५. धम्मपद ४।२२
६. इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली भाग ३, पृ० ४७३–७५
७. इण्डि० एण्टि० जिल्द ६, पृ० १६३
   (ख) जैन साहित्य का इतिहास–पूर्वपीठिका पृ० ५
८. भारतीय दर्शन का इतिहास—डाक्टर राधाकृष्णन् जिल्द १, पृ० २८७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डाक्टर स्टीवेन्सन,[९] और जयचन्द्र विद्यालंकार[१०] प्रभृति अन्य अनेक[११] चिन्तकों का भी यही अभिमत रहा है।

भगवान् ऋषभदेव के व्यक्तित्व और कृतित्व का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत ग्रन्थ में दिया गया है। मेरा स्वयं का विचार और भी अधिक विस्तार से अन्वेषणाप्रधान लिखने का था किन्तु समयाभाव और साधनाभाव के कारण वह सम्भव नहीं हो सका, जो कुछ भी लिख गया हूँ, वह पाठकों के सामने है।

चन्दन बाला श्रमणी संघ की अध्यक्षा, परम विदुषी स्वर्गीया महासती श्री सोहन कुँवर जी म० को मैं भुला नहीं सकता, उनके त्याग-वैराग्यपूर्ण पावन प्रवचन को श्रवण कर मैंने सद्गुरुवर्य, गम्भीर तत्त्वचिन्तक श्री पुष्कर मुनिजी म० के पास जैनेन्द्री दीक्षा ग्रहण की। और इस प्रकार वे मेरे जीवन-महल के निर्माण में नींव की ईंट के रूप में रही हैं। उनकी आद्य प्रेरणा से ही प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रणयन हुआ है।

परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य के प्रति किन शब्दों में आभार प्रदर्शित करूँ, यह मुझे नहीं सूझ रहा है। जो कुछ भी इसमें श्रेष्ठता है वह उन्हीं के दिशा-दर्शन और असीम कृपा का प्रतिफल है।

मेरी विनम्र प्रार्थना को सन्मान देकर श्रद्धेय उपाध्याय कविरत्न श्री अमर चन्द्र जी म० ने स्वस्थ न होने पर भी महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना लिख कर ग्रन्थ की श्रीवृद्धि की है और साथ ही पुस्तक के संशोधन, एवं परिमार्जन में जिस आत्मीय भाव से मुझे अनुगृहीत किया है, उसे व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द मेरे पास नहीं हैं।

स्नेहमूर्ति श्री हीरामुनि जी, साहित्यरत्न, शास्त्री गणेश मुनि जी, जिनेन्द्र मुनि, रमेश मुनि और राजेन्द्र मुनि प्रभृति मुनि-मण्डल का स्नेहास्पद व्यवहार, लेखन कार्य में सहायक रहा है। ज्ञात और अज्ञात रूप में जिन महानुभावों का तथा ग्रन्थों का सहयोग लिया गया है, उन सभी के प्रति हार्दिक आभार अभिव्यक्त करता हूँ, और भविष्य में उन सभी के मधुर सहयोग की अभिलाषा रखता हूँ।

आचार्य धर्मसिंह जैन धर्म स्थानक
छीपापोल अमदाबाद–१ — **देवेन्द्र मुनि**
दि० ३–४–६७ आदिनाथ जयन्ती

---

९. कल्पसूत्र की भूमिका—डा० स्टीवेन्सन
१०. भारतीय इतिहास की रूपरेखा—जयचन्द्र विद्यालंकार पृ० ३४८
११. (क) जैन साहित्य का इतिहास—पूर्वपीठिका पृ० १०८
(ख) हिन्दी विश्वकोष भाग० ३ पृ० ४४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वं देव जगतां ज्योतिः,
त्वं देव जगतां गुरुः ।
त्वं देव जगतां धाता,
त्वं देव जगतां पतिः ।।

—आचार्य जिनसेन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्र स्ता व ना

●

अनन्त असीम व्योममण्डल से भी विराट् ! अगाध अपार महासागर से भी विशाल ! एक अद्‌भुत, एक अद्वितीय ज्योतिर्धर व्यक्तित्व ! जिधर से भी देखिए, जहाँ भी देखिए, और जब भी देखिए—सहस्र-सहस्र, लक्ष-लक्ष, कोटि-कोटि, असंख्य अनन्त प्रकाश किरणें विकीर्ण होती दीखेंगी। महाकाल इतिहास की गणना से परे हो गया, संख्यातीत दिन और रात गुजरते चले गए, परन्तु वह ज्योति न बुझी है, न बुझ सकेगी।

भगवान् ऋषभदेव के व्यक्तित्व और कृतित्व को शब्दों की सीमा में नहीं, बाँधा जा सकता। प्राकृत में, संस्कृत में, अपभ्रंश में, नानाविध अन्यान्य लोक-भाषाओं में ऋषभदेव के अनेकानेक जीवन चरित्र लिखे गए हैं, लिखे जा रहे हैं, परन्तु उनके विराट् एवं भव्य जीवन की सम्पूर्ण छवि कोई भी अंकित नहीं कर सका है। अनन्त आकाश में गरुड़—जैसे असंख्य विहग जीवन-भर उड़ान भरते रहे हैं, पर आकाश की इयत्ता का अता-पता न किसी को लगा है, न लगेगा। क्या लौकिक और क्या लोकोत्तर, क्या भौतिक और क्या आध्यात्मिक, क्या सामाजिक और क्या राष्ट्रीय, क्या नैतिक और क्या धार्मिक—सभी दृष्टियों से उनका जीवन दिव्य है, महतोमहीयान् है। हम जीवन-निर्माण की दिशा में जब भी और जो कुछ भी पाना चाहें, उनके जीवन पर से पा सकते हैं। आवश्यकता है केवल देखने वाली दृष्टि की और उस दृष्टि को सृष्टि के रूप में अवतरित करने की।

भगवान् ऋषभदेव मानवसंस्कृति के आदि संस्कर्ता हैं, आदि निर्माता हैं। पौराणिक गाथाओं के आधार पर, वह काल, आज भी हमारे मानस-चक्षुओं के समक्ष है, जब कि मानव मात्र आकृति से ही मानव था। अपने क्षुद्र देह की सीमा में बँधा हुआ एक मानवाकार पशु ही तो था, और क्या ? न उसे लोक का पता था, न परलोक का। न उसे समाज का पता था, न परिवार का। न उसे धर्म का पता था, न अधर्म का। बिल्कुल कटा हुआ-सा अकेला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शून्य जीवन। पिता-पुत्र, भाई-बहिन, पति-पत्नी—जैसा कुछ भी लोक-व्यवहार नहीं, कोई भी मर्यादा नहीं। साथ रहने वाली नारी को हम भले ही आज की शिष्ट भाषा में पत्नी कह दें, परन्तु सचाई तो यह है कि वह उस युग में एकमात्र नारी थी, स्त्री थी, और कुछ नहीं। स्त्री केवल देह है और पत्नी इससे कुछ ऊपर है। पति-पत्नी दो शरीर नहीं हैं, जो वासना के माध्यम से एक दूसरे के साथ हो लेते हैं। वह एक सामाजिक एवं नैतिक भाव है, जो कर्तव्य की स्वर्णरेखाओं से मर्यादाबद्ध है। और यह सब उस आदि युग में कहाँ था? वन की सभ्यता। अकेला व्यक्तित्व! भूख लगी तो इधर-उधर गया, कन्द-मूल फल खा आया। प्यास लगी तो झरनों का बहता पानी पी आया। अन्य किसी के लिए न लाना और न ले जाना। न भविष्य के लिए ही कुछ संग्रह। अतीत और अनागत से कट कर केवल वर्तमान में आबद्ध। अपने ही पेट की क्षुधा-पिपासा से घिरा केवल व्यक्तिनिष्ठ जीवन! प्रकृति पर आश्रित, वृक्षों से परिपोषित! कर्तृत्व नहीं, केवल भोक्तृत्व! श्रम नहीं, पुरुषार्थ नहीं। न अपने पैरों खड़ा होना, और न अपने हाथों कुछ करना। मनुष्य के शरीर में नीचे क्षुधातुर पेट और ऊपर खाने वाला मुख। बीच में हाथ पैरों का कोई खास काम नहीं, उत्पादक के रूप में। यह चित्र है, भगवान् ऋषभदेव से पूर्व मानव-सभ्यता का।

भगवान् ऋषभदेव के युग में यह वन-सभ्यता बिखर रही थी। जनसंख्या बढ़ने लगी। उपभोक्ता अधिक होते जा रहे थे, परन्तु उनकी तुलना में उपभोगसामग्री अल्प। ऐसी स्थिति में संघर्ष अवश्यम्भावी था, और वह हुआ भी। क्षुधातुर जनता वृक्षों के बँटवारे के लिए लड़ने लगी। सब ओर आपाधापी मच गई। भगवान् ऋषभदेव ने उक्त विषम स्थिति में अभावग्रस्त जनता का योग्य नेतृत्व किया। उन्होंने घोषणा की—अकर्म भूमि का युग समाप्त हो रहा है, अब जनसमाज को कर्मभूमि युग का स्वागत करना चाहिए। प्रकृति रिक्त नहीं है। अब भी उसके अन्तर में अक्षय भण्डार छिपा पड़ा है। पुरुष हो, पुरुषार्थ करो। अपने मन मस्तिष्क से सोचो-विचारो और उसे हाथों से मूर्तरूप दो। श्रम में ही श्री है, अन्यत्र नहीं। एक मुख है खाने वाला, तो हाथ दो हैं खिलाने वाले। भूखों मरने का प्रश्न ही कहाँ है? अपने श्रम के बल पर अभाव को भाव से भर दो। भगवान् ऋषभदेव ने कृषि का सूत्रपात किया। अनेकानेक शिल्पों की अवतारणा की। कृषि और उद्योग में वह अद्भुत सामंजस्य स्थापित किया कि धरती पर स्वर्ग उतर आया। कर्मयोग की वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रसधारा बही कि उजड़ते और वीरान होते जन-जीवन में सब ओर नव-वसन्त खिल उठा, महक उठा। हे मेरे देव, यदि उस समय तुम न होते तो पता नहीं, इस मानव जाति का क्या हुआ होता ? होता क्या, मानव-मानव एक दूसरे के लिए दानव हो गया होता, एक दूसरे को जंगली जानवरों की तरह खा गया होता। **"बुभुक्षितः किं न करोति पापम् ?"**

भौतिक वैभव एवं ऐश्वर्य के उत्कर्ष में एक खतरा है, वह यह कि मनुष्य स्वयं को भूल जाता है, अन्धेरे में भटक जाता है। भोग में भय छिपा है, **"भोगे रोगभयम्।"** तन का रोग ही नहीं, मन का रोग भी। मन का रोग तन के रोग से भी अधिक भयावह है। बढ़ती हुई मन की विकृतियाँ मानव को कहीं का भी नहीं छोड़तीं—न घर का न घाट का। भगवान् ऋषभदेव ने इस तथ्य को भी ध्यान में रखा। उनका गृहसंसार से महाभिनिष्क्रमण अपनी अन्तरात्मा को परिमार्जित एवं परिष्कृत करने के लिए तो था ही, साथ ही सार्वजनीन हित का भाव भी उसके मूल में था। महापुरुषों की साधना स्व-परकल्याण की दृष्टि से द्व्यर्थक होती है—**"एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा।"** भगवान् ऋषभदेव ने शून्य निर्जन वनों में, एकान्त गिरि-निकुञ्जों में, भयावह श्मशानों में, गगन-चुम्बी पर्वतों की शान्त नीरव गुफाओं में तपः साधना की। यह तप जहाँ बाह्य रूप में ऊँचा और बहुत ऊँचा था वहाँ आभ्यन्तर रूप में गहरा और बहुत गहरा भी था। वे शरीर से परे, इन्द्रियों से परे और मन से परे होते गए—होते गए, और अपने आपके निकट, अपने शुद्ध—निरंजन—निर्विकार स्वरूप के समीप पहुँचते गए—पहुँचते गए। और लम्बी साधना के बाद एक दिन वह मंगल क्षण आया कि अन्तर में कैवल्य ज्योति का अनन्त अक्षय-अव्याबाध महाप्रकाश जगमगा उठा, स्वमंगल के साथ ही विश्वमंगल का द्वार खुल गया। भगवान् ऋषभदेव तीर्थङ्कर बन गए। धर्मदेशना के रूप में उनकी अमृतवाणी का वह दिव्यनाद गूँजा कि जन-जीवन में फैलता आ रहा अन्धकार छिन्न-भिन्न होगया, सब ओर आध्यात्मिक भावों का दिव्य आलोक आलोकित हो गया।

भगवान् ऋषभदेव का जीवन समन्वय का जीवन है। वह मानवजाति के समक्ष इहलोक का आदर्श प्रस्तुत करता है, परलोक का आदर्श प्रस्तुत करता है, और प्रस्तुत करता है—इहलोक-परलोक से परे लोकोत्तरता का आदर्श। उनका जीवन-दर्शन उभयमुखी है। जहाँ वह बाह्यजीवन को परिष्कृत एवं विकसित करने की बात करता है, वहाँ अन्तर्जीवन को भी विशुद्ध एवं प्रबुद्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रखने का परामर्श देता है। उनका अध्यात्म भी निष्क्रिय, जड़ एवं एकांगी नहीं है, वह सचेतन है, प्राणवान है, और देश, काल एवं व्यक्ति की भूमिकाओं को यथार्थ के धरातल पर स्पर्श करता है। इस सन्दर्भ में उनके अपने ही जीवन के एक दो प्रसङ्ग हैं।

साधना-काल में जब भगवान जंगलों एवं पहाड़ों के सूने अंचलों में एकान्त साधनारत रह रहे थे, तो प्रारम्भ में एक वर्ष तक उन्होंने अन्न-जल ग्रहण नहीं किया, अनशनतप की लम्बी साधना चलती रही। प्रभु के लिए तो यह सहज था, परन्तु साथ में दीक्षित होने वाले चार सहस्र साधक विचलित हो गए। वे भूख की वेदना को अधिक काल तक सहन न कर सके। भगवान् की देखादेखी कुछ दूर तक तो अनशन के पथ पर साथ-साथ चले, परन्तु गजराज की गति को कोई पकड़े भी तो कहाँ तक पकड़े ? सब के सब पिछड़ते चले गये, कोई कहीं तो कोई कहीं। पिछड़े ही नहीं, पथ-भ्रष्ट भी हो गये। विवेकज्ञान के अभाव में ऐसा ही कुछ हुआ करता है—**देखा-देखी साधे जोग, छीजे काया बाढ़ै रोग**। भगवान् ऋषभदेव ने वर्ष समाप्त होते-होते जब यह देखा तो उनका चिन्तन मोड़ ले गया। उन्होंने आहार ग्रहण करने का संकल्प किया, अपने लिए उतना नहीं, जितना कि भविष्य के साधकों को साधना के मध्यम मार्ग की दृष्टि प्रदान करने के लिए। भगवान् के तत्कालीन अनक्षर चिन्तन को अक्षरबद्ध किया है—जैन दर्शन के सुप्रसिद्ध तत्त्वचिन्तक महामनीषी आचार्य जिनसेन ने, अपने महापुराण में—

न केवलमयं कायः, कर्शनीयो मुमुक्षुभिः।
नाऽप्युत्कटरसैः पोष्यो, मृष्टैरिष्टैश्च वल्भनैः ॥५॥
वशे यथा स्युरक्षाणि, नोत धावन्त्यनूत्पथम्।
तथा प्रयतितव्यं स्याद्, वृत्तिमाश्रित्य मध्यमाम् ॥६॥
दोषनिर्हरणायेष्टा, उपवासाद्युपक्रमाः।
प्राणसन्धारणायायम्, आहारः सूत्रदर्शितः ॥७॥
कायक्लेशो मतस्तावन्, न संक्लेशोऽस्ति यावता।
संक्लेशे ह्यसमाधानं, मार्गात् प्रच्युतिरेव च ॥८॥

—पर्व २०

—मुमुक्षु साधकों को यह शरीर न तो केवल कृश एवं क्षीण ही करना चाहिए और न रसीले एवं मधुर मन चाहे भोजनों से इसे पुष्ट ही करना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

—जिस तरह भी ये इन्द्रियाँ साधक के वशवर्ती रहें, कुमार्ग की ओर न दौड़ें, उसी तरह मध्यम वृत्ति का आश्रय लेकर प्रयत्न करना चाहिए।

—दोषों को दूर करने के लिए उपवास आदि का उपक्रम है, और प्राण धारणा के लिए आहार का ग्रहण है, यह जैन सिद्धान्तसम्मत साधना सूत्र है।

— साधक को कायक्लेश तप उतना ही करना चाहिए, जितने से अन्तर में संक्लेश न हो। क्योंकि संक्लेश हो जाने पर चित्त समाधिस्थ नहीं रहता; उद्विग्न हो जाता है, जिसका किसी न किसी दिन यह परिणाम आता है कि साधक पथभ्रष्ट हो जाता है।

भगवान् ऋषभ के द्वितीय पुत्र महाबली बाहुबली, युद्ध में अपने ज्येष्ठ बन्धु भरतचक्र-वर्ती को पराजित करके भी, राज्यासन से विरक्त हो गए। कायोत्सर्ग मुद्रा में अचल हिमाचल की तरह अविचल एकान्त वनप्रदेश में खड़े हो गए। एक वर्ष पूरा होने को आया, न अन्न का एक दाना और न पानी की एक बूँद। न हिलना, न डुलना। सचेतन भी अचेतन की तरह सर्वथा निष्प्रकम्प। कथाकारों की भाषा में मस्तक पर के केश बढ़ते-बढ़ते जटा हो गए और उनमें पक्षी नीड़ बनाकर रहने लगे। घुटनों तक ऊँचे मिट्टी के वल्मीक चढ़ गए, और उनमें विषधर सर्प निवास करने लगे। कभी-कभी सर्प वल्मीक से निकलते, सरसराते ऊपर चढ़ जाते और समग्र शरीर पर लीला-विहार करते रहते। भूमि से अंकुरित लताएँ पदयुगल को परिवेष्टित करती हुई भुजयुगल तक लिपट गईं। इतना होने पर भी कैवल्य नहीं मिला, नहीं मिला। तप का ताप चरमबिन्दु पर पहुँच गया, फिर भी अन्तर का कल्मष गला नहीं, मन का मालिन्य धुला नहीं। इतनी अधिक उग्र, इतनी अधिक कठोर साधना प्रतिफल की दिशा में शून्य क्यों, यह प्रश्न हर साधक के मन पर मंडराने लगा। भगवान् ऋषभदेव ने ब्राह्मी और सुन्दरी को भेजा, इसलिए कि वह बाहर से अन्दर में प्रवेश करे, अन्दर के अहं को तोड़ गिराए। ब्राह्मी और सुन्दरी के माध्यम से भगवान् ऋषभदेव का सन्देश मुखरित हुआ।

"आज्ञापयति तातस्त्वां, ज्येष्ठार्य ! भगवानिदम्।
हस्तिस्कन्धाधिरूढानाम् उत्पद्यते न केवलम्॥"

—त्रिषष्टि० १।६।७८८

—हे आर्य, पूज्य पिता भगवान् ऋषभदेव तुम्हें सूचित करते हैं कि हाथी पर चढ़े हुओं को केवल ज्ञान नहीं हो सकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कैसा हाथी ? 'मैं बड़ा हूँ, अपने से छोटे बन्धुओं को कैसे वन्दन करूँ'—यह अहङ्कार का हाथी। इसी हाथी पर से नीचे उतरना है। बाहुबली के चिन्तन ने अहं से निरहं की ओर मोड़ लिया और ज्योंही वंदन के लिए कदम उठाया कि केवल ज्ञान का महाप्रकाश जगमगा उठा। उक्त उदाहरण से क्या ध्वनित होता है ? यही कि भगवान् ऋषभदेव साधना के केवल बाह्य परिवेश तक ही प्रतिबद्ध नहीं थे। उनकी साधनाविषयक प्रतिबद्धता बाहर की नहीं, अन्दर की थी। उनकी साधना का मुख्य आधार तन नहीं, मन था। मन भी क्या, अन्तश्चैतन्य था। और भगवान् का यह दिव्य दर्शन जैनसाधना का बीज मंत्र हो गया। आदिकाल से ही जैन दर्शन तन का नहीं, मन का दर्शन है, अन्तश्चैतन्य का दर्शन है। वह साधना के बाह्य पक्ष को स्वीकारता है अवश्य, परन्तु अमुक सीमा तक ही। बाह्य सान्त है, अन्तर ही अनन्त है। अतः अनन्त की उपलब्धि बाहर में नहीं, अन्दर में है। जब-जब साधक बाहर भटकता है, बाहर को ही सब कुछ मान बैठता है, तब-तब भगवान् ऋषभदेव के जीवन-प्रसङ्ग साधक को अन्दर की ओर उन्मुख करते हैं, हठ योग से सहज योग की ओर अग्रसर करते हैं।

भगवान् ऋषभदेव की निर्मल धर्मचेतना आज की भाषा में कहे जाने वाले पन्थों—मतों—सम्प्रदायों से सर्वथा अतीत थी। उनका सत्य इन सब क्षुद्र परिवेशों में बद्ध नहीं था। जब कभी प्रसंग आया, उन्होंने सत्य के इस मर्म को स्पष्ट किया है—बिना किसी छिपाव और दुराव के। राजकुमार मरीचि भगवान् के पास आर्हती दीक्षा ग्रहण कर लेता है, पर समय पर ठीक तरह साध नहीं पाता है। तितिक्षा की कमी, परीषहों के आक्रमण से विचलित हो गया; तो पथ-च्युत हो गया, परिव्राजक हो गया। इस पर, सम्भव है, और सबने धिक्कारा हो, परन्तु भगवान् सर्वतोभावेन तटस्थ रहे। मरीचि जैन श्रमण-परम्परा के विपरीत परिव्राजक का बाना लिए समवसरण के द्वार पर बैठा रहता, परन्तु इधर से कोई ननुनच नहीं। इतना ही नहीं, एक बार भरत चक्रवर्ती के प्रश्न के समाधान में घोषणा की कि मरीचि वर्तमान कालचक्र का अन्तिम तीर्थङ्कर होगा। श्रमण परम्परा से उत्प्रव्रजित व्यक्ति के लिए भगवान् की यह घोषणा एक गम्भीर अर्थ की ओर संकेत करती है। वेष और पन्थ की सीमाएँ सत्य की सीमा को काट नहीं सकतीं। सत्य क्षीरसागर के जल की भाँति सदा निर्मल एवं मधुर होता है, चाहे वह किसी भी पात्र में हो, और जब भी कभी हो। वेष और पन्थ की सीमाओं को लाँघ कर व्यक्ति में आज नहीं, तो कल अभिव्यक्त होने वाले सत्य का इस प्रकार उद्घाटन करना, भगवान्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषभदेव की निर्मल सत्यनिष्ठा का एक अद्‌भुत उदाहरण है। मैं अनुभव करता हूँ, यदि कोई और होता तो ऐसी स्थिति में कुछ और ही कहता या मौन रहता। परन्तु भगवान् ऋषभदेव, देव क्या, देवाधिदेव थे। जिन्होंने पथभ्रष्ट मरीचि के धूमिल वर्तमान को नहीं, किन्तु उज्ज्वल भविष्य को उजागर किया और यह सत्य प्रमाणित किया कि पतित से पतित व्यक्ति भी घृणापात्र नहीं है। क्या पता, वह कहाँ और कब जीवन की ऊँची-से-ऊँची बुलन्दियों को छूने लगे, आध्यात्मिक पवित्रता को पूर्णरूपेण आत्मसात् करने लगे। क्या आज हम उक्त घटना पर से अपने प्रतिपक्षी खेमे के लोगों के प्रति सद्‌भावना का भावादर्श नहीं ले सकते ?

भगवान् ऋषभदेव जीवन के हर कोण पर उसी प्रकार दिव्य हैं, जिस प्रकार वैडूर्यरत्न। उनका जीवन आज की विषम परिस्थितियों में भी अपने निर्मल चरित्र की आभा बिखेर रहा है। सत्य की खोज में चल रहे हर यात्री के मन पर एक गहरी छाप डाल रहा है। उनका स्मरण होते ही तमसाच्छन्न जन-मानस में एक दिव्य एवं सुखद प्रकाश फैल जाता है। उनके जीवन चरित्र मानव चरित्र के निर्माण के लिए हर युग में प्रेरणा स्रोत रहे हैं और रहें गे। यही कारण है कि महाकाल के प्रवाह में कोटि-कोटि दिन और रात बह गये, परन्तु उनके जीवनलेखन की परम्परा अब भी गंगा की धारा के समान प्रवहमान है।

मुझे हार्दिक हर्ष है कि भगवान ऋषभदेव के जीवनचरित्रों के मुक्ताहार में एक और सुन्दर मुक्ता पिरोया गया है। हमारे तरुण साहित्यकार श्री देवेन्द्र मुनि ने भगवान ऋषभदेव के चरणकमलों में अपनी भावभरी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है;और इस रूप में भगवान आदिनाथ का एक सुन्दर अनुशीलनात्मक जीवन चरित्र लिखा है।

श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा के प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया यह प्रमाणपुरःसर जीवनचरित्र, चरित्रग्रन्थों के संदर्भ में नवीन शैली प्रस्तुत करता है। देवेन्द्र जी का बौद्धिक उन्मेष जो नवीन आलोक पा रहा है, उसका स्पष्ट संकेत उनकी यह कृति है।

मैं शुभाशा करता हूँ, भविष्य उनका साथ दे और वे अपने अध्ययन-अनुशीलन एवं चिन्तन को और अधिक व्यापक बनाते हुए, भविष्य में और भी अधिक सुन्दर एवं विचार पूर्ण कृतियों से जैन साहित्य की श्रीवृद्धि कर यशस्वी हों।

जैन स्थानक
आगरा
१० अप्रेल, १९६७

—उपाध्याय अमर मुनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रम

● प्रथम खण्ड	१–५०
श्री ऋषभ पूर्वभव	
● द्वितीय खण्ड	५१–१६३
गृहस्थ जीवन	५३
साधक जीवन	९३
तीर्थङ्कर जीवन	१०६
● परिशिष्ट (१)	१६५
„ (२)	१६९
„ (३)	१७१
„ (४)	१७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषभदेव : एक परिशीलन

प्रथम खण्ड

ऋषभ जीवन की पृष्ठ भूमि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिचय-रेखा

- श्रमण संस्कृति
  - एक फुलवाड़ी
    - आस्तिक्य
      - सुनहरे चित्र
        - धन्ना सार्थवाह
          - उत्तरकुरु में मनुष्य
            - सौधर्म देवलोक
              - महाबल
                - ललिताङ्ग देव
                  - वज्रजंघ
                    - युगल
                      - सौधर्म कल्प
                        - जीवानन्द वैद्य
                          - अच्युत देवलोक
                            - वज्रनाभ
                              - सर्वार्थ सिद्ध
                                - श्री ऋषभदेव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री ऋषभपूर्वभव : एक विश्लेषण

●

श्रमण संस्कृति

श्रमण संस्कृति आर्यावर्त की एक विशिष्ट और महान् संस्कृति है, जो अज्ञात काल से ही विश्व को आध्यात्मिक विचारों का पाथेय प्रदान करती रही है। वे विमल विचार काल्पनिक वायवीय न होकर जीवनप्रसूत हैं, अनुभवपरिचालित हैं। डाक्टर एल. पी. टेसीटरी के शब्दों में—"इसके मुख्य तत्त्व विज्ञान-शास्त्र के आधार पर रचे हुए हैं; यह मेरा अनुमान ही नहीं बल्कि अनुभवमूलक पूर्ण दृढ़विश्वास है कि ज्यों-ज्यों पदार्थविज्ञान उन्नति करता जायेगा त्यों-त्यों जैन धर्म के सिद्धान्त सत्य सिद्ध होते जायेंगे।"

एक फुलवाड़ी

श्रमण संस्कृति एक अद्‌भुत फुलवाड़ी है, जिसमें भक्तियोग की भव्यता, ज्ञानयोग का गौरव, कर्मयोग की कठिनता, अध्यात्म योग का आलोक, तत्त्वज्ञान की तलस्पर्शिता, दर्शन की दिव्यता, कला की कमनीयता, भाषा की प्रांजलता, भावों की गम्भीरता और चरित्र-चित्रण के फूल खिल रहे हैं, महक रहे हैं, जो अपनी सहज सलौनी सुवास से जन-जन के मन को मुग्ध कर रहे हैं।

आस्तिक्य

श्रमण-संस्कृति की विचारधारा का आधार आस्तिकता है। आस्तिक और नास्तिक शब्दों को सुधी विज्ञों ने जिस प्रकार विभिन्न विधाओं में संजोया है, पिरोया है, उससे वह चिरचिन्त्य पहेली बनगया है। प्रस्तुत पहेली को संस्कृत व्याकरण के समर्थ आचार्य पाणिनि के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"**अस्तिनास्ति-दिष्टं मतिः**"[1] सूत्र के रहस्य का उदघाटन करते हुए भट्टोजी दीक्षित ने बड़ी खूबी के साथ सुलझाया है। उन्होंने पूर्वाग्रहरहित सूत्र का निष्कर्ष निर्भीकता के साथ प्रकाशित करते हुए कहा—"जो निश्चित रूप से परलोक व पुनर्जन्म को स्वीकारता है वह आस्तिक है और जो उसे स्वीकारता नहीं वह नास्तिक है।"[2] अधिक स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो "पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरक, पुनर्जन्म और इस प्रकार आत्मा के नित्यत्व में निष्ठा रखना ही आस्तिक्य है। आस्तिक के अन्तर्मानस में ये विचार-लहरें सदा तरंगित होती हैं कि 'मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, प्रकृत चोले का परित्याग कर कहाँ जाऊँगा और मेरी जीवन-यात्रा का अन्तिम पड़ाव कहाँ होगा?'[3] वह आत्मा के अस्तित्व को स्वीकारता है और आत्मा की संस्थिति के स्थान लोक को भी स्वीकारता है, लोक में इतस्ततः परिभ्रमण के कारण कर्म को भी स्वीकारता है और कर्मों से मुक्त होने के साधनरूप क्रिया को भी।[4] श्रमण-संस्कृति का यह दृढ़ मन्तव्य है कि अनादि अनन्त काल से आत्मा विराट् विश्व में परिभ्रमण कर रहा है। नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगति में इधर-उधर घूम रहा है। गणधर गौतम की जिज्ञासा का

---

१. अष्टाध्यायी, अध्याय ४, पाद ४, सू० ६०

२. अस्ति परलोक इत्येवमतिर्यस्य स आस्तिकः, नास्तीतिमतिर्यस्य स नास्तिकः। —सिद्धान्तकौमुदी (निर्णय सागर, बम्बई) पृ० २७३

३. (क) अत्थि मे आया उववाइए? नत्थि मे आया उववाइए? के अहं आसी? के वा इओ चुए इह पेच्चा भविस्सामि?
—आचारांग १।१।१। सू० ३

(ख) कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः,
का मे जननी को मे तातः?
इति परिभावय सर्वमसारं,
सर्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम्॥
—चर्पटपंजरिका—आचार्य शंकर

४. से आयावादी, लोगावादी, कम्मावादी, किरियावादी।
—आचारांग श्रु० १, अ० १ उ० १, सू० ५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाधान करते हुए भगवान् श्री महावीर ने कहा—"ऐसा कोई भी स्थल नहीं, जहाँ यह आत्मा न जन्मा हो[५], और ऐसा कोई भी जीव नहीं, जिसके साथ मातृ, पितृ, भ्रातृ, भगिनी, भार्या, पुत्र-पुत्री—रूप सम्बन्ध न रहा हो।[६] गौतम को सम्बोधित कर भगवान् श्री महावीर ने कहा—हे गौतम ! तुम्हारा और हमारा सम्बन्ध भी आज का नहीं, चिरकाल पुराना है। चिरकाल से तू मेरे प्रति स्नेह सद्भावना रखता रहा है। मेरे गुणों का उत्कीर्तन करता रहा है। मेरी सेवा भक्ति करता रहा है, मेरा अनुसरण करता रहा है। देव व मानव भव में एक बार नहीं, अपितु अनेक बार हम साथ रहे हैं।[७] स्पष्ट है कि साधारण सांसारिक आत्मा की तरह ही श्रमण संस्कृति के आराध्यदेव तीर्थङ्कर व बुद्ध भी, तीर्थङ्कर व बुद्ध बनने के पूर्व, नाना गतियों में भ्रमण करते रहे हैं। श्रमण संस्कृति ने ब्राह्मणसंस्कृति की तरह उन्हें नित्यबुद्ध व नित्यमुक्त रूप ईश्वर नहीं कहा है और न उन्हें ईश्वर का अवतार या अंश ही कहा है। उनका जीवन प्रारम्भ में कालीमाई की तरह काला था, उन्होंने साधना के साबुन से जीवन को माँजकर किस प्रकार निखारा, इसका विशद विश्लेषण आगम व आगमेतर साहित्य में किया गया है।

५. जाव किं सव्वपाणा उववण्णपुव्वा ?

हंता गोयमा ! असतिं अदुवा अणंतखुत्तो।

—भगवती सूत्र श० २, उ० ३

६. जीवे सव्वजीवाणं माइत्ताए, पियत्ताए, भाइत्ताए, भगिणित्ताए, भज्जत्ताए, पुत्तत्ताए, धूयत्ताए, सुण्हत्ताए उववन्नपुव्वे ?

हंता गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो।

—भगवती शतक १२, उद्दे० ७

७. समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं आमंतेत्ता एवं वयासी—चिरसंसिट्ठोऽसि मे गोयमा ! चिरसंथुओऽसि मे गोयमा ! चिरपरिचिओऽसि मे गोयमा ! चिरजुसिओऽसि मे गोयमा ! चिराणुगओऽसि मे गोयमा ! चिराणुवत्तीसि मे गोयमा ! अणंतरं देवलोए अणंतरं माणुस्सए भवे किं परं..... ।

—भगवती शत० १४, उ० ७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुनहरे चित्र

श्रमण संस्कृति दो प्रधान धाराओं में प्रवाहित है। एक जैन संस्कृति और दूसरी बौद्धसंस्कृति। दोनों ही धाराओं में अपने-अपने आराध्यदेवों के पूर्वभवों का कथन है। जातककथा में बुद्धघोष ने महात्मा बुद्ध के पाँच सौ-सैंतालीस भवों का निरूपण किया है।[८] उन्होंने बोधिसत्त्व के रूप में तपस्वी, राजा, वृक्ष, देवता, गज, सिंह, तुरङ्ग, शृंगाल, कुत्ता, बन्दर, मछली, सूअर, भैंसा, चाण्डाल, आदि अनेक जन्म ग्रहण किये। बुद्धत्व प्राप्त करने के लिए उन्होंने कैसा और किस प्रकार जीवन जीया, यह उनके जीवनप्रसंगों के द्वारा बताया गया है। बुद्धत्व की उपलब्धिहेतु एक भव का प्रयत्न नहीं, अपितु अनेक भवों का प्रयत्न अपेक्षित है। जैन संस्कृति के समर्थ आचार्यों ने भी तीर्थङ्करों के पूर्वभवों के सुनहरे चित्र प्रस्तुत किये हैं। उन्हीं ग्रन्थों के आधार से अगली पंक्तियों में भगवान् श्री ऋषभदेव के पूर्वभवों का चित्रण किया जा रहा है।

किसी भी महान् पुरुष के वर्तमान का सही मूल्यांकन करने के के लिए उसकी पृष्ठभूमि को देखना अत्यन्त आवश्यक है। उससे हमें पता चलता है कि आज के महान् पुरुष की महत्ता कोई आकस्मिक घटना नहीं, वरन् जन्म जन्मान्तरों में की गई उसकी साधना का ही परिणाम है। पूर्वभवों का वर्णन उसके क्रम-विकास का सूचक है। इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर जैन इतिहास के लेखकों ने भगवान् श्री ऋषभदेव के पूर्व भवों का विवेचन किया है, जिनसे प्रतीत होता है कि किस प्रकार क्रमशः उनकी आत्मा बलवत्तर होती गई और अन्त में उसका श्री ऋषभदेव के रूप में विकास सामने आया।

आवश्यकनिर्युक्ति, आवश्यकचूर्णि, आवश्यकमलयगिरिवृत्ति, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, और कल्पसूत्र की टीकाओं में श्री ऋषभदेव के तेरह भवों का उल्लेख है[९] और दिगम्बराचार्य जिनसेन ने

---

८. बौद्ध धर्म क्या कहता है ? —लेखक कृष्णदत्त भट्ट पृ० २७

९. धण-मिहुण-सुर-महव्वल-ललियंग य वइरजंघ मिहुणे य ;
सोहम्म-विज्ज-अच्चुय चक्की सव्वट्ठ उसभे य।
—आवश्यक मलय० वृत्ति पृ० १५७।२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महापुराण में व आचार्य दामनन्दी ने पुराणसारसंग्रह[१०] में दस भवों का निरूपण किया है। अन्य दिगम्बर विज्ञों ने भी उन्हीं का अनुकरण किया है। श्वेताम्बराचार्यों ने श्री धन्ना सार्थवाह के भव से भवों की परिगणना की है और दिगम्बराचार्यों ने महाबल के भव से उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त अनेक जीवनप्रसंगों में भी अन्तर है।

यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इन भवों की जो परिगणना की गई है वह सम्यक्त्व उपलब्धि के पश्चात् की है।[११] श्री ऋषभदेव के जीव को अनादि काल के मिथ्यात्व रूपी निविड अन्धकार में से सर्वप्रथम धन्ना (धन) सार्थवाह के भव में मुक्ति मिली थी और सम्यग्दर्शन के अमित आलोक के दर्शन हुए थे।

[१] धन्ना सार्थवाह

भगवान् श्री ऋषभदेव का जीव एक बार अपर महाविदेह क्षेत्र के क्षितिप्रतिष्ठ नगर में धन्ना सार्थवाह बनता है।[१२] उसके पास विपुल

---

१०. आद्यो महाबलो ज्ञेयो ललिताङ्गस्ततोऽपरः।
वज्रजङ्घस्तथाऽऽर्यश्च श्रीधरः सुविधिस्तथा॥
अच्युतो वज्रनाभोऽहमिन्द्रश्च वृषभस्तथा।
दशैतानि पुराणानि पुरुदेवाऽऽश्रितानि वै॥
—पुराणसार संग्रह सर्ग० ५, श्लो० ५–६ पृ० ७४

११. सम्प्रति यथा भगवता सम्यक्त्वमवाप्तं यावतो वा भवानवाप्तसम्यक्त्वः संसारं पर्यटितवान्।
—आवश्यक मल० वृत्ति १५७।२

१२. तेणं कालेणं तेणं समएणं अवरविदेहवासे धणो नाम सत्थवाहो होत्था।
—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, पृ० ११५

(ख) आवश्यक मल० वृत्ति, पृ० १५८।१

(ग) आवश्यक चूर्णिः पृ० १३१

(घ) तत्र चाऽऽसीत् सार्थवाहो, धनो नाम यशोधनः।
आस्पदं सम्पदामेकं, सरितामिव सागरः॥
—त्रिषष्टि० १।१।३६। पृ० २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैभव था, सुदूर विदेशों में वह व्यापार भी करता था। एक बार उसने यह उद्घोषणा करवाई कि जिसे वसन्तपुर व्यापारार्थ चलना है वह मेरे साथ सहर्ष चले। मैं सभी प्रकार की उसे सुविधाएँ दूँगा।[13] शताधिक व्यक्ति व्यापारार्थ उसके साथ प्रस्थित हुए।[14]

धर्मघोष नामक एक जैन आचार्य भी अपने शिष्यसमुदाय सहित वसन्तपुर धर्म प्रचारार्थ जाना चाहते थे। पर, पथ विकट संकटमय होने से बिना साथ के जाना सम्भव नहीं था। आचार्य ने जब उद्घोषणा सुनी तो श्रेष्ठी के पास गये और श्रेष्ठी के साथ चलने की भावना अभिव्यक्त की।[15] श्रेष्ठी ने अपने भाग्य की सराहना करते हुए

---

१३. (क) सो खितिपइट्ठियातो नगरातो वाणिज्जेण वसन्तपुरं पट्ठितो घोसणं करेइ, जहा—जो मए सद्धिं जाइ तस्साहमुदन्तं वहामि, तं जहा—"खाणेण वा पाणेण वा, वत्थेण वा, पत्तेण वा, ओसहेण वा, भेसज्जेण वा अण्णेण वा जो जेण विणा विसूरइ तेणं" ति।

—आवश्यक मल० वृ० पत्र १५८।१

(ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति पत्र ११५

(ग) सार्थवाहो धनस्तस्मिन् सकलेऽपि पुरे ततः।
डिण्डिमं ताडयित्वोच्चैः पुरुषानित्यघोषयत्॥
असौ धनः सार्थवाहो, वसन्तपुरमेष्यति।
ये केऽप्यत्र यियासन्ति, ते चलन्तु सहाऽमुना॥
भाण्डं दास्यत्यभाण्डायाऽवाहनाय च वाहनम्।
सहायं चाऽसहायायाऽसम्बलाय च सम्बलम्॥
दस्युभ्यस्त्रास्यते मार्गे, श्वपदोपद्रवादपि।
पालयिष्यत्यसौ मन्दान् सहगान् बान्धवानिव॥

—त्रिषष्टि० १।१।४५–४८ पृ० ३।१

१४. तं च सोऊण बहवे तडियकप्पडियातो पयट्ठा।

—आवश्यक मल० वृ० प० १५८

१५. आवश्यक चूर्णि० पृ० १३१

(ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति प० ११५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुचरों को श्रमणों के लिए भोजनादि की सुविधा का पूर्ण ध्यान रखने का आदेश दिया।[१६] आचार्य श्री ने श्रमणाचार का विश्लेषण करते हुए बताया कि श्रमण के लिए औद्देशिक, नैमित्तिक, आदि सभी प्रकार का दूषित आहार निषिद्ध है। उसी समय एक अनुचर आम का टोकरा लेकर आया, श्रेष्ठी ने आम ग्रहण करने के लिए विनीत विनती की। पर, आचार्य श्री ने बताया कि श्रमण के लिए सचित्त पदार्थ भी अग्राह्य है। श्रमण के कठोर नियमों को सुनकर श्रेष्ठी अवाक् था।[१७]

आचार्य श्री भी सार्थ के साथ पथ को पार करते हुए बढ़े जा रहे थे। वर्षा ऋतु आई। आकाश में उमड़-घुमड़ कर घनघोर घटाएँ छाने लगीं एवं गम्भीर गर्जना करती हुई हजार-हजार धाराओं के रूप में बरसने लगीं। उस समय सार्थ भयानक अटवी में से गुजर रहा था। मार्ग कीचड़ से व्याप्त था। सार्थ उसी अटवी में वर्षावास व्यतीत करने हेतु रुक गया।[१८] आचार्य श्री भी निर्दोष स्थान में स्थित हो गये।[१९]

(ग) नवरं इहं तेण समं गच्छो साहूणं सम्पट्ठितो।

—प्रव्यं हारिभद्रीयक मल० वृ० पृ० १५८।१

(घ) अत्रान्तरे धर्मघोष आचार्य तुम्भं कप्पइ।
धर्मेण पावयन् पृथ्वीं साथरियमसंकयी॥

—त्रिषष्ठि १।१।५१।३।१

१६. धनेन पृष्टास्त्वाचार्याः समागमनकारणम्।
वसन्तपुरमेष्यामस् त्वत्सार्थेनेत्यचीकथन्॥
सार्थवाहोऽप्युवाचैवं धन्योऽद्य भगवन्नहम्।
अभिगम्या यदायाता मत्सार्थेन च यास्यथ॥

—त्रिषष्ठि १।१।५३–५४।३।१

१७. त्रिषष्ठि १।१।५५ से ६१ पृ० ३।२

१८. (क) धणसत्थवाह घोसण,
जइगमणं अडवि वासठाणं च।

—आवश्यक निर्युक्ति, गा०१६८

(ख) आवश्यक चूर्णि, जिन० पृ० १३१

(ग) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस अटवी में सार्थ को अपनी कल्पना से अधिक रुकना पड़ा, अतः साथ की खाद्य सामग्री समाप्त हो गई। क्षुधा से पीड़ित सार्थ अरण्य में कन्द मूलादि की अन्वेषणा कर जीवन व्यतीत करने लगा।[२०]

वर्षावास के उपसंहार काल में धन्ना सार्थवाह को अकस्मात् स्मृति आई कि "मेरे साथ जो आचार्य आये थे उनकी आज तक मैंने सुध नहीं ली। उनके आहार की क्या व्यवस्था है, इसकी मैंने जाँच नहीं की। कन्दमूलादि सचित्त पदार्थों का वे उपभोग नहीं करते।" वह शीघ्र ही आचार्य के पास गया और आहार के लिए अभ्यर्थना की।[२१]

(घ) सो य सत्थो जाहे अडविमज्झं सम्पत्तो, ताहे वासारत्तो जातो, ताहे सो सत्थवाहो अतिदुग्गया पन्थ त्ति काऊण तत्थेव सत्थनिवेसं काउं वासावासं ठितो, तम्मि ठिए सव्वो सत्थो ठिओ।

—आवश्यक निर्युक्ति मल० वृ० प० १५८।१

(ङ) त्रिषष्ठि १।१।१००।

१९. त्रिषष्ठि १।१।१०२।

२०. (क) जाहे य तेसिं हारिभद्रीया वृत्ति[लयाणं निट्ठियं भोयणं, ताहे कन्दमूलाइं समुद्दिस[illegible]म्तस्मिन् चोच्चै

—आवश्यक चूर्णि पृ० ११५

(ख) जाहे य तेसिं तत्थाडुयाणं भोयणं निट्ठियं, ताहे ते कन्दमूलफलाणि समुद्दिसिउमारद्धा।

—आवश्यक निर्युक्ति मल० वृ० १५८।१

(ग) भूयस्त्वात् सार्थलोकस्य दीर्घत्वात् प्रावृषोऽपि च।
अत्रुट्यत् तत्र सर्वेषां पाथेययवसादिकम्॥
ततश्चेतस्ततश्चेलुः कुचेलास्तापसा इव।
खादितुं कन्दमूलादि क्षुधार्ताः सार्थवासिनः॥

—त्रिषष्ठि १।१।१०३–१०४

(घ) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति ११५

२१. आवश्यकनिर्युक्ति गा० १६८।

(ख) आवश्यकचूर्णि पृ० १३२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री ने श्रेष्ठी को कल्प्य और अकल्प्य का परिज्ञान कराया। श्रेष्ठी ने भी कल्प्य अकल्प्य का परिज्ञान कर उत्कृष्ट भावना से प्रासुक विपुल घृत दान दिया।[२२] फलस्वरूप सम्यक्त्व की उपलब्धि हुई।[२३]

(ग) एवं काले वच्चति थोवावसेसे वासारत्ते धणस्स चिन्ता जाता—को एत्थ सत्थे दुक्खितोत्ति ? ताहे सरियं जहा मए समं साहुणो आगया तेसिं कंदाई न कप्पंतित्ति, ते दुक्खिया महातवस्सिणो, तो तेसिं कल्लं देमि, ततो पभाए ते निमंतिया।

—आवश्यक मल० वृ० प० १५८।१

(घ) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११५।

२२. बहु बोलीणे वासे चिन्ता घयदाणभासि तया।

—आवश्यक निर्युक्ति गा० १६८

(ख) आवश्यकचूर्णि पृ० १३२।

(ग) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति ११५।

(घ) ते भणन्ति—जं अम्हं कप्पियं होज्जा तं गेण्हेज्जामो। तेण पुच्छियं भयवं ! किं पुण तुब्भं कप्पइ ? साहूहिं भणियं—जं अम्ह निमित्तमकयमकारियमसंकप्पियमहापवत्तातो पाकातो भिक्खामित्तं·····ततो तेण साहूण फासुयं विउलं घयदाणं दिन्नं।

—आवश्यक मल० वृ० प० १५८।१

(ङ) धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं, पुण्योऽहमिति चिन्तयन्।
रोमाञ्चितवपुः सर्पिः साधवे स स्वयं ददौ॥
आनन्दाश्रुजलैः पुण्यकन्दं कन्दलयन्निव।
घृतदानावसानेऽथ धनोऽवन्दत तौ मुनी॥
सर्वकल्याणसंसिद्धौ सिद्धमन्त्रसमं ततः।
वितीर्य धर्मलाभं तौ जग्मतुर्निजमाश्रयम्॥

—त्रिषष्ठि० १।१।१४०–१४२ प० ६

२३. तदानीं सार्थवाहेन दानस्याऽस्य प्रभावतः।
लेभे मोक्षतरोर्बीजं बोधिबीजं सुदुर्लभम्॥

—त्रिषष्ठि १।१।१४३।प० ६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२] उत्तरकुरु में मनुष्य

वहाँ से धन्ना सार्थवाह का जीव आयु पूर्ण कर दान के दिव्य प्रभाव से उत्तरकुरुक्षेत्र में मनुष्य हुआ।[२४]

[३] सौधर्म देवलोक

वहाँ से भी आयुपूर्ण होने पर धन्ना सार्थवाह का जीव सौधर्म कल्प में देव रूप में उत्पन्न हुआ।[२५]

२४. सो अहाउयं पालइत्ता तेण दाणफलेण उत्तरकुरुमणुतो जातो।
—आवश्यक चूर्णि पृ० १३२

(ख) तेण दाणफलेण उत्तरकुराए मणूसो जाओ।
—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति, पृ० ११६

(ग) सो य अहाउयं पालित्ता कालमासे कालं किच्चा तेण दाणफलेण उत्तरकुराए मणूसो जातो।
—आवश्यक मल० वृत्ति० प० १५८।१

(घ) कालेन तत्र पूर्णायुः कालधर्ममुपागतः।
आस्थितैकान्तसुषमेषूत्तरेषु कुरुष्वसौ॥
सीतानद्युत्तरतटे जम्बूवृक्षानुपूर्वतः।
उत्पेदे युग्मधर्मेण, मुनिदानप्रभावतः॥
—त्रिषष्ठि १।१।२२६–२२७ प० ६

२५. (क) ततो आउक्खएण उव्वट्टिऊणं सोहम्मेकप्पे तिपलिओवमठितीओ देवो जाओ।
—आवश्यक चूर्णि पृ० १३२

(ख) ततो आउक्खए सोहम्मे कप्पे देवो उववन्नो।
—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११६।१

(ग) आवश्यक मल० वृ० प० १५८।१

(घ) मिथुनायुः पालयित्वा, धनजीवस्ततश्च सः।
प्राग्जन्मदानफलतः सौधर्मे त्रिदशोभवत्॥
—त्रिषष्ठि १।१।२३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४] महाबल[२६]

वहाँ से च्यवकर धन्ना सार्थवाह का जीव पश्चिम महाविदेह के गंधिलावती विजय में वैताढ्य पर्वत की विद्याधर श्रेणी के अधिपति शतबल राजा का पुत्र महाबल हुआ।[२७]

आचार्य जिनसेन[२८] व आचार्य दामनन्दी[२९] ने उसे अतिबल का

---

२६. आवश्यक चूर्णि में आचार्य जिनदास गणि महत्तर ने महाबल, ललिताङ्ग, वज्रजङ्घ, युगल, सुधर्मदेवलोक इन—पाँच भवों का वर्णन नहीं किया है। —लेखक

२७. तत्तोऽवि चविऊणं इहेव जम्बुद्दीवे अवरविदेहे गन्धिलावइविजए वेयड्ढपव्वए गन्धारजणवए गन्धसमिद्धे विज्जाहर नगरे..... सयबलराइणो पुत्तो महाबलो नाम राया जातो।

—आवश्यक मल० वृ० प० १५८।२

(ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृ० प० ११६

(ग) च्युत्वा सौधर्मकल्पाच्च, विदेहेष्वपरेष्वथ।
विजये गन्धिलावत्यां वैताढ्यपृथिवीधरे॥
गान्धाराख्ये जनपदे, पुरे गन्धसमृद्धके।
राज्ञः शतबलाख्यस्य विद्याधरशिरोमणेः॥
भार्यायां चन्द्रकान्तायां पुत्रत्वेनोदपादि सः।
नाम्ना महाबल इति, बलेनाऽतिमहाबलः॥

—त्रिषष्ठि १।१।२३९–२४१ प० १०।१

(घ) उत्तरकुरु सोहम्मे महाविदेहे महब्बलो राया।

—आव० नि० म० वृ० १५९।१

२८. तस्याः पतिरभूत्खेन्द्रमुकुटारूढशासनः।
खगेन्द्रोऽतिबलो नाम्ना प्रतिपक्षबलक्षयः॥१२२॥
मनोहराङ्गी तस्याभूत् प्रिया नाम्ना मनोहरा॥१३१॥
तयोर्महाबलख्यातिरभूत्सूनुर्महोदयः॥१३३॥

—महापुराण पर्व ४। श्लो० १२२, १३१, १३३ पृ० ८२–८३

२९. अलकायां मनोहर्य्यास्तनयोऽतिबलस्य च।
महाबल इतिख्यातः खेन्द्रोऽभूद् दशमे भवे॥

—पुराणसार संग्रह ५।१।१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुत्र लिखा है। और आचार्य मलयगिरि[30] व आचार्य हेमचन्द्र[31] ने अतिबल का पौत्र लिखा है।

महाबल के पिता को एक बार संसार से विरक्ति हुई,[32] पुत्र को राज्य दे वह स्वयं श्रमण बन गये।[33]

एक बार सम्राट् महाबल अपने प्रमुख अमात्यों[34] के साथ राज्य-

---

३०. अइबलरण्णो णत्ता।

—आवश्यकनिर्युक्ति मल० वृ० १५८

३१. त्रिषष्ठिशला० १।१२५

३२. अथान्येद्युरसौ राजा निर्वेदं विषयेष्वगात्।
वितृष्णः कामभोगेषु प्रव्रज्यायै कृतोद्यमः॥

—महापुराण, जिन० ४।१४१।८४

(ख) त्रिषष्ठि १।१।२५० से २६५।

३३. पुत्रं राज्ये निवेश्यैवं स्वयं शतबलस्ततः।
आददे शमसाम्राज्यमाचार्यचरणान्तिके॥

—त्रिषष्ठि १।१।२७४

(ख) इति निश्चित्य धीरोऽसावभिषेकपुरस्सरम्।
सूनवे राज्यसर्वस्वमदितातिबलस्तदा॥
ततो गज इवापेतबन्धनो निःसृतो गृहात्।
बहुभिः खेचरैः सार्द्धं दीक्षां स समुपाददे॥

—महापुराण जिन० ४।१५१।१५२ पृ० ८५

३४. ते स्वयम्बुद्धः सम्भिन्नमतिः शतमतिस्तथा।
स्वयंबुद्धश्च तत्रासाञ्चक्रिरे मन्त्रिणोऽपि हि॥

—त्रिषष्ठि० १।१।२८७।११

(ख) महामतिश्च सम्भिन्नमतिः शतमतिस्तथा।
स्वयंबुद्धश्च राज्यस्य मूलस्तम्भा इव स्थिराः॥

—महापुराण ४।१६१।८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सभा में बैठे हुए मनोविनोद कर रहे थे।[३५] उनके प्रमुख चार अमात्यों में से स्वयंबुद्ध अमात्य सम्यग्दृष्टि था, संभिन्नमति, शतमति, और महामति ये मिथ्यादृष्टि थे।

स्वयंबुद्ध ने देखा—सम्राट् भौतिक वैभव की चकाचौंध में जीवन के लक्ष्य को विस्मृत कर चुके हैं। उसने सम्राट् को सम्बोध देने हेतु धर्म के रहस्य पर प्रकाश डालते हुए कहा—दया धर्म का मूल है। प्राणों की अनुकम्पा ही दया है। दया की रक्षा के लिए ही शेष गुणों का उत्कीर्तन किया गया है। दान, शील, तप, भावना, योग, वैराग्य उस धर्म के लिंग हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ही सनातन धर्म है।[३६]

अन्य अमात्यों ने परिहास करते हुए कहा—मंत्रिवर ! जब आत्मा ही नहीं है तब धर्म-कर्म का प्रश्न ही नहीं रहता। जिस प्रकार महुआ, गुड़, जल, आदि पदार्थों को मिला देने से उनमें मादक शक्ति पैदा हो जाती है, उसी प्रकार पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि के संयोग से चेतना

---

३५. कदाचिदथ तस्याऽऽसीद्वर्षवृद्धिदिनोत्सवः ।
मङ्गलैर्गीतवादित्रनृत्यारम्भैश्च संभृतः ।।
सिंहासने तमासीनं तदानीं खचराधिपम् ।
—महापुराण० जिन० प० ५, श्लो० १–२ पृ० ९१

स्वयम्बुद्धोऽभवत्तेषु सम्यग्दर्शनशुद्धधीः ।
शेषा मिथ्यादृशस्तेऽमी सर्वे स्वामिहितोद्यताः ।।
—महापुराण ४।१९२। पृ० ८९

(ख) पुराणसार श्लो० ७, सर्ग १। पृ० १

३६. दयामूलो भवेद्धर्मो दयाप्राण्यनुकम्पनम् ।
दयायाः परिरक्षार्थं गुणाः शेषाः प्रकीर्तिताः ।।
धर्मस्य तस्य लिङ्गानि दमः क्षान्तिरहिंस्रता ।
तपो दानं च शीलं च योगो वैराग्यमेव च ।।
अहिंसा सत्यवादित्वमचौर्यं त्यक्तकामता ।
निष्परिग्रहता चेति प्रोक्तो धर्मः सनातनः ।।
—महापुराण, पर्व ५, श्लो० २१, २२, २३ पृ० ९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्पन्न हो जाती है।[३७] एतदर्थ ही लोक में पृथ्वी आदि तत्त्वों से बने हुए हमारे शरीर से पृथक् रहने वाला चेतना नामक कोई पदार्थ नहीं है। क्योंकि शरीर से पृथक् उसकी उपलब्धि नहीं होती। संसार में जो पदार्थ प्रत्यक्ष रूप से पृथक् सिद्ध नहीं होते उनका अस्तित्व भी आकाशकुसुमवत् माना जाता है।[३८] वर्तमान के सुखों को त्याग कर भविष्य के सुखों की कल्पना करना "आधी छोड़ एक को धावै, ऐसा डूबा थाह न पावै" की लौकिक कहावत चरितार्थ करना है।

नास्तिक मत का निरसन करते हुए स्वयंबुद्ध अमात्य ने कहा—पदार्थों को जानने का साधन केवल इन्द्रिय और मन का प्रत्यक्ष ही नहीं, अपितु अनुभव प्रत्यक्ष, योगि-प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम भी हैं। इन्द्रिय और मन की शक्ति अत्यन्त सीमित है। इनसे तो चार पाँच पीढी के पूर्वज भी नहीं जाने जा सकते तो क्या उनका अस्तित्व भी न माना जाय ? इन्द्रियाँ केवल शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्शात्मक मूर्त द्रव्य को जानती हैं और मन उन्हीं पदार्थों का चिन्तन करता है। यदि मन अमूर्त पदार्थों को जानता भी है तो आगम दृष्टि से ही। स्पष्ट है कि विश्व के सभी पदार्थ सिर्फ इन्द्रिय और मन से नहीं जाने जा सकते। आत्मा शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श नहीं है।[३९] वह अरूपी सत्ता है।[४०] अरूपी तत्त्व इन्द्रियों से नहीं जाने जा सकते।

---

३७. पृथ्व्यप्तेजःसमीरेभ्यः समुदभवति चेतना।
गुडपिष्टोदकादिभ्यो, मदशक्तिरिव स्वयम् ॥
—त्रिषष्ठि०॥१।१।३३१

(ख) पृथिव्यप्पवनाग्नीनां सङ्घातादिह चेतना।
प्रादुर्भवति मद्याङ्गसङ्गमान्मदशक्तिवत् ॥
—महापुराण पर्व ५, श्लो० ३० पृ० ९३

३८. ततो न चेतना कायतत्त्वात्पृथगिहास्ति नः।
तस्यास्तद्व्यतिरेकेणानुपलब्धेः खपुष्पवत् ॥
—महापुराण पर्व ५, श्लो० ३१, पृ० ९३

३९. से ण सद्दे, ण रूवे, ण गन्धे, ण रसे, ण फासे।
—आचारांग १।५।६।३३३

४०. अरूवी सत्ता..... —आचारांग १।५।६।३३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्म-सिद्धि के प्रबल प्रमाण प्रस्तुत करते हुए उसने कहा—स्वसंवेदन से भी आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है। मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ—यह अनुभूति शरीर को नहीं होती, अतएव इस अनुभूति का कर्त्ता शरीर से भिन्न ही होना चाहिए।[४१] सभी को यह विश्वास होता है कि मैं हूँ, पर किसी को भी यह अनुभव नहीं होता कि मैं नहीं हूँ।[४२]

प्रत्येक इन्द्रिय को अपने विषय का ही परिज्ञान होता है, अन्य इन्द्रिय के विषय का नहीं। यदि आत्म-तत्त्व को न माना जाय तो सभी इन्द्रियों के विषयों का जोड़ रूप [संकलनात्मक] ज्ञान नहीं हो सकता, किन्तु पापड़ खाते समय स्पर्श, रस, गंध, रूप और शब्द—इन पाँचों का संकलित ज्ञान स्पष्ट होता है। एतदर्थ इन्द्रियों के विषयों का संकलनात्मक परिज्ञान करने वाले को इन्द्रियों से पृथक् मानना होगा और वही आत्मा है।

आत्मा और शरीर एक नहीं है। जो चैतन्य है, वह शरीर रूप नहीं है और जो शरीर है, वह चैतन्य रूप नहीं है, क्योंकि दोनों एक दूसरे से स्वभावतः विसदृश हैं। चैतन्य चित्स्वरूप है—ज्ञान दर्शन रूप है और शरीर अचित्स्वरूप है—जड़ है।[४३] आत्मा और शरीर का सम्बन्ध

---

४१. स्वसंवेदनवेद्योऽयमात्माऽस्ति सुखदुःखवित्।
निषेधितुं बाधाभावाच्छक्यते न हि केनचित्॥
सुखितोऽहं दुःखितोऽहमिति कस्याऽपि जातुचित्।
जायते प्रत्ययो नैव विनाऽऽत्मानमबाधितः॥
—त्रिषष्ठि० १।१।३४७–३४८। पृ० १३

४२. सर्वोह्यात्माऽस्तित्वं प्रत्येति, न नाहमस्मीति।
—ब्रह्मभाष्य १।१।१। आचार्य शंकर

४३. कायात्मकं न चैतन्यं, न कायश्चेतनात्मकः।
मिथो विरुद्धधर्मत्वात्तयोश्चिदचिदात्मनोः॥
—महापुराण पर्व ५, श्लो० ५१ पृ० ९६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुतः तलवार और म्यान की तरह है। आत्मा तलवार है और शरीर म्यान है।[४४]

भूतचतुष्टय से आत्मा की उत्पति होना संभव नहीं है। क्योंकि जो जड़ है उससे चेतन की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? वस्तुतः कार्यकारणभाव और गुणगुणिभाव सजातीय पदार्थों में ही होता है, विजातीयों में नहीं।[४५] पुष्प, गुड और जल के संयोग से मादक शक्ति उत्पन्न होने का उदाहरण देना भी अनुपयुक्त है, क्योंकि गुड़ आदि भी जड़ हैं और उनसे समुत्पन्न मादक शक्ति भी जड़ है। यह तो सजातीय द्रव्य से ही सजातीय द्रव्य की उत्पत्ति हुई, न कि विजातीय द्रव्य की।[४६] यदि आप शरीर के साथ ही आत्मा की उत्पत्ति मानते हैं तो जन्मते ही शिशु में दुग्धपान की इच्छा और प्रवृत्ति कैसे होती है?[४७] अतः यह स्पष्ट है कि आत्मा है, वह नित्य है, फलतः पूर्वभव के संस्कारों से ही ऐसा होता है।

---

४४. कायचैतन्ययोर्नैक्यं विरोधिगुणयोगतः।
तयोरन्तर्बहीरूपनिर्भासाच्चासिकोशवत् ॥
—महापुराण ५।५२।९६

४५. न भूतकार्यं चैतन्यं घटते तद्गुणोऽपि वा।
ततो जात्यन्तरीभावात्तद्विभागेन तद्ग्रहात् ॥
—महापुराण ५।५३।९६

४६. एतेनैव प्रतिक्षिप्तं मदिराङ्गनिदर्शनम्।
मदिराङ्गेष्वविरोधिन्या मदशक्तेर्विभावनात् ॥
—महापुराण ५।६५।९८

(ख) किञ्च पिष्टोदकादिभ्यो, मदशक्तिरचेतना।
अचेतनेभ्यो जातेति दृष्टान्तश्चेतने कथम्? ॥
—त्रिषष्ठि १।१।३६१ पृ० १४।१

४७. विना हि पूर्वचैतन्यानुवृत्तिं जातमात्रकः।
अशिक्षितः कथं बालो, मुखमर्पयति स्तने? ॥
—त्रिषष्टि १।१।३५३

(ख) आद्यन्तौ देहिनां देहौ न विना भवतस्तनू।
पूर्वोत्तरे संविदधिष्ठानत्वान्मध्यदेहवत ॥
—महापुराण ५।६८।९८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार स्वयंबुद्ध के अकाट्य तर्कों से नास्तिकवादी अमात्य परास्त हो गये। सभी ने आत्मा के पृथक् अस्तित्व को स्वीकार किया और महाबल राजा भी अत्यन्त आह्लादित हुआ।[४८]

स्वयंबुद्ध अमात्य ने अन्य अनेक उपनयों के[४९] द्वारा सम्राट् को यह बताया कि शुभ और अशुभ कृत्यों का फल भी क्रमशः शुभ और अशुभ ही होता है।[५०]

वार्ता का उपसंहार करते हुए उसने कहा—राजन्! आज प्रातः मैं नन्दन वन में परिभ्रमणार्थ गया था, वहाँ दो विशिष्ट लब्धिधारी मुनिवर पधारे। मैंने उनसे आपकी अवशेष आयु के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रस्तुत की तो उन्होंने बताया कि वह एक माह की ही शेष है।[५१]

---

४८. इति तद्वचनाज्जाता परिषत्सकलैव सा।
निरारेकात्मसद्भावे सम्प्रीतश्च सभापतिः॥
—महापुराण ५।८६।१०१

(ख) त्रिषष्ठि १।१

४९. त्रिषष्ठि १।१।४००।४४२

(ख) महापुराण पर्व ५। श्लोक ८९ से २१२, पृ० १०१–११२

५०. सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णफला हवन्ति।
दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णफला हवन्ति॥
—औपपातिक सूत्र

५१. ताभ्यां तु भवतो मासमात्रमायुर्निवेदितम्।
अतस्त्वां त्वरयाम्यद्य, धर्मायैव महामते!
—त्रिषष्ठि १।१।४४६

(ख) मासमात्रावशिष्टञ्च जीवितं तस्य निश्चिनु।
तदस्य श्रेयसे भद्र! घटेथास्त्वमशीतकः॥
—महापुराण ५।२२१।११३

(ग) मासावसेसाऊ·····
—आव० नि० मल० वृ० पृ० १५८

(घ) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्राट् महाबल अमात्य के मुँह से मुनि की भविष्यवाणी सुनकर सकपका गया। मृत्यु के भयानक आतङ्क से वह विह्वल हो गया। अमात्य ने निवेदन किया—राजन्! घबराइये नहीं, घबराने वाला योद्धा रणक्षेत्र में जूझ नहीं सकता।

अमात्य की प्रेरणा से पुत्र को राज्यभार सँभलाकर महाबल मुनि बने।[५२] दुष्कृत्यों की आलोचना की, और बावीस दिन का संथारा कर समाधि पूर्वक आयुष्य पूर्ण किया।[५३]

---

५२. आमेत्युदित्वा स्वसुतं स्वे पदे प्रत्यतिष्ठिपत्।
महाबलस्तदाचार्यः प्रासादे प्रतिमामिव॥
—त्रिषष्ठि १।१।४५२

(ख) सुतायातिबलाख्याय दत्वा राज्यं समृद्धिमत्।
सर्वानापृच्छ्य मन्त्र्यादीन् परं स्वातन्त्र्यमाश्रितः॥
—महापुराण ५।२२८।११३

५३. (क) बावीसदिवसे भत्तपच्चक्खाणं काउं मरिऊण।
—आवश्यक मल० वृ० प० १५८।२

(ख) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११६।

(ग) समाहितः स्मरन् पञ्चपरमेष्ठिनमस्क्रियाम्।
द्वाविंशति दिनान् कृत्वाऽनशनं स व्यपद्यत॥
—त्रिषष्ठि १।१।४४६। पृ० १७

(घ) यावज्जीवं कृताहारशरीरत्यागसंगरः।
गुरुसाक्षि समारुक्षद् वीरशय्याममूढधीः॥
—महापुराण ५।२३०।११३

देहाहारपरित्यागव्रतमास्थाय धीरधीः।
परमाराधनाशुद्धिं स भेजे सुसमाहितः॥
—महा० ५।२३३।११४

द्वाविंशतिदिनान्येष कृतसल्लेखना विधिः।
जीवितान्ते समाधाय मनः स्वं परमेष्ठिषु॥
—महा० पर्व ५। श्लोक २४८। पृ० ११५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार धन सार्थवाह का जीव, जो अब तक आध्यात्मिक विकास की प्रथम भूमिका—सम्यग् दर्शन—तक ही पहुँच पाया था, इस भव में अधिक अग्रसर हुआ। इस बार उसने चतुर्थ गुण-स्थान से ऊपर उठ कर छठे-सातवें गुणस्थान की भूमिका पर पाँव रक्खा।

[५] ललिताङ्ग देव

महाबल का जीव ऐशान कल्प में ललिताङ्ग देव हुआ[५४] और वह वहाँ स्वयंप्रभा देवी में अत्यधिक आसक्त बना। जब स्वयंप्रभा देवी वहाँ से च्यव जाती है तब ललिताङ्ग देव उसके विरह में आकुल-व्याकुल बन जाता है।[५५] स्वयं बुद्ध अमात्य, जो इसी कल्प में देव बना था, आकर सान्त्वना देता है।[५६] स्वयंप्रभा देवी भी वहाँ से

---

५४. ईसाणे कप्पे सिरिप्पभविमाणे ललियंगतो नाम देवो जातो।
—आवश्यक निर्युक्ति मल० वृ० प० १५८

(ख) ईसाणे कप्पे सिरिप्पभेविमाणे ललियंओ नाम देवो जाओ।
—आवश्यक हरिभद्रीयावृत्ति प० ११६

(ग) त्रिषष्ठि० १।१।४६०।४६४

(घ) देहभारमथोत्सृज्य लघूभूत इव क्षणात्।
प्रापत् स कल्पमैशानम् अनल्पसुखसन्निधिम्॥
तत्रोपपादशय्यायाम् उदपादि महोदयः।
विमाने श्रीप्रभे रम्ये, ललिताङ्गः सुरोत्तमः॥
—महापुराण ५।२५३–२५४।११६

५५. दलं वृक्षादिव दिवस्ततोऽच्योष्ट स्वयम्प्रभा।
आयुःकर्मणि हि क्षीणे, नेन्द्रोऽपि स्थातुमीश्वरः॥
आक्रान्तः पर्वतेनेव, कुलिशेनेव ताडितः।
प्रियाच्यवनदुःखेन, ललिताङ्गोऽथ मूर्च्छितः॥
—त्रिषष्ठि १।१।५१५–५१६

५६. इतश्च स्वामिमरणोत्पन्नवैराग्यवासनः।
स्वयम्बुद्धोऽप्यात्तदीक्षः श्रीसिद्धाचार्यसन्निधौ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च्यव कर मानवलोक में निर्नामिका नामक बालिका होती है और वहाँ केवली भगवान् के उपदेश से श्राविका बन कर, आयु पूर्ण कर पुनः उसी कल्प में ललिताङ्ग देव की प्रिया स्वयंप्रभा देवी बनती है।[५७] ललिताङ्ग देव मोह की प्रबलता के कारण पुनः उसमें आसक्त बनता है।[५८] अन्त में ललिताङ्ग देव नमस्कार महामन्त्र का जाप करते हुए आयु पूर्ण करता है।[५९]

[६] वज्रजङ्घ

वहाँ से च्यवकर ललिताङ्ग देव का जीव जम्बूद्वीप की पुष्कलावती विजय में लोहार्गल नगर के अधिपति सुवर्णजंघ सम्राट् की पत्नी-लक्ष्मी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ।[६०] वज्रजंघ नाम दिया गया।[६१]

सुचिरं निरतीचारं पालयित्वा व्रतं सुधीः।
ऐशाने दृढ़धर्माख्य, इन्द्रसामानिकोऽभवत्॥
स पूर्वभवसम्बन्धाद् बन्धुवत् प्रेमबन्धुरः।
आश्वासयितुमित्यूचे, ललिताङ्गमुदारधीः॥

—त्रिषष्ठि १।१।५२०–५२२

५७. पल्योपमपृथक्त्वावशिष्टमायुर्यदास्थ च।
तदोदपादि पुण्यैः स्वैः प्रेयस्यस्य स्वयंप्रभा॥

—महापुराण श्लो० २८६ प० ५, पृ० ११८

५८. सैषा स्वयंप्रभाऽस्यासीत् परा सौहार्दभूमिका।
चिरं मधुकरस्येव प्रत्यग्रा चूतमञ्जरी॥

—महापुराण श्लो० २८८ पर्व० ५ पृ० ११८

५९. नमस्कारपदान्युच्चैः अनुध्यायन्नसाध्वसः।
साध्वसौ मुकुलीकृत्य करौ प्रायाद श्यताम्॥

—महापुराण श्लो० २५, पर्व० ६, पृ० १२२

६०. (क) पुक्खलावइविजए लोहग्गलणगरसामी वइरजंघो नाम राजा जाओ।

— आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति० पृ० ११६

(ख) ततो आउक्खए चइऊण इहेव जंबुद्दीवे दीवे पुक्खलाइविजए लोहग्गलनगरसामी वइरजंघो नाम राया जातो।

—आवश्यक मल० वृ० १५८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महापुराणकार ने माता का नाम वसुन्धरा और पिता का नाम वज्रबाहु[६२] और नगर का नाम उत्पलखेटक दिया है।[६३]

स्वयंप्रभा देवी भी वहाँ से आयु पूर्ण कर आचार्य श्री हेमचन्द्र के अभिमतानुसार पुण्डरीकिणी नगरी के स्वामी वज्रसेन राजा की धर्मपत्नी "गुणवती" रानी की कुक्षि में उत्पन्न हुई। जन्म के पश्चात् उसका नाम 'श्रीमती' रखा।[६४] आचार्य श्री जिनसेन व आचार्य

(ग) जम्बूद्वीपे ततः पूर्वविदेहेषूपसागरम् ।
महानद्याश्च सीताभिधानाया उत्तरे तटे ॥
विजये पुष्कलावत्यां लोहार्गलमहापुरे ।
राज्ञः सुवर्णजङ्घस्य लक्ष्म्यां पत्न्यां सुतोऽभवत् ॥
—त्रिषष्ठि० १।१।६२४–६२५

६१. अथ कन्दलितानन्दावमुष्य दिवसे शुभे ।
वज्रजङ्घ इति प्रीतौ पितरौ नाम चक्रतुः ॥
—त्रिषष्ठि० १।१।६२६

६२. वज्रबाहुः पतिस्तस्य वज्रीवाज्ञापरोऽभवत् ।
कान्ता वसुन्धरास्यासीद् द्वितीयेव वसुन्धरा ॥
तयोः सूनुरभूद्देवो ललिताङ्गस्ततश्च्युतः ।
वज्रजंघ इति ख्यातिं दधदन्वर्थतां गताम् ॥
—महापुराण श्लो० २८।२९ प० ६ पृ० १२२

६३. जम्बूद्वीपे महामेरोः विदेहे पूर्वदिग्गते ।
या पुष्कलावतीत्यासीत् जानभूमिर्मनोरमा ॥
स्वर्गभूनिर्विशेषां तां पुरमुत्पलखेटकम् ।
—महापुराण श्लो० २६।२७ पर्व० ६। पृ० १२२

६४. स्वयम्प्रभाऽपि दुःखार्ता, कालेन कियताऽप्यथ ।
धर्मकर्मणि संलीना, व्यच्योष्ट ललिताङ्गवत् ॥
नगर्यां पुण्डरीकिण्यां विजयेऽत्रैव चक्रिणः ।
वज्रसेनस्य भार्यायां, गुणवत्यां सुताऽभवत् ॥
सर्वलोकातिशायिन्या, श्रियाऽसौ संयुता ततः ।
श्रीमतीत्यभिधानेन पितृभ्यामप्यधीयत ॥
—त्रिषष्ठि० १।१।६२७–६२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री दामनन्दी के मतानुसार उनके पिता का नाम "वज्रदन्त" और माता का नाम "लक्ष्मीमती" था।[६५]

एक बार "श्रीमती" महल की छत पर घूम रही थी कि उसी समय सन्निकटवर्ती उद्यान में एक मुनि को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। केवल महोत्सव करने हेतु देवगण आकाशमार्ग से आ-जा रहे थे।[६६] आकाश मार्ग से जाते हुए देवसमूह को निहार कर श्रीमती को पूर्वभव की स्मृति उद्बुद्ध हुई[६७], उसने उस स्मृति को एक पट्ट पर चित्रित

(ख) नामतः श्रीमती ख्याता रूपविद्याकलागुणैः
—पुराणसार २६।१।६

६५. .....तस्याः पतिरभून्नाम्ना बज्रदन्तो महीपतिः।
महापुराण श्लो० ५८। पर्व ६, पृ० १२४
लक्ष्मीरिवास्य कान्ताङ्गी लक्ष्मीमतिरभूत्प्रिया ॥
—वही श्लो० ५९। पृ० ६, पृ० १२४
तयोः पुत्री बभूवासौ विश्रुता श्रीमतीति या।
—वही श्लो० ६० पर्व० ६, पृ० १२४

(ख) पुराण सार संग्रह २५।१।६

६६. (क) ततो मनोरमोद्याने सुस्थितस्य महामुनेः।
उत्पन्ने केवलज्ञाने ददर्शाऽऽगच्छतः सुरान् ॥
—त्रिषष्ठि १।१।६३३

(ख) तदेतदभवत्तस्याः संविधानकमीदृशम्।
यशोधरगुरोस्तस्मिन् पुरे कैवल्यसंभवे ॥
मनोहराख्यमुद्यानम्, अध्यासीनं तमर्चितुम्।
देवाः सम्प्रापुरारूढविमानाः सह सम्पदा ॥
—महापुराण श्लो० ८५–८६, पर्व ६। पृ० १२७

६७. दृष्टपूर्वं मया क्वेदमित्यूहापोहकारिणी।
जन्मान्तराणि पूर्वाणि निशास्वप्नमिवाऽस्मरत् ॥
—त्रिषष्ठि १।१।६३४

(ख) देवागमे क्षणात्तस्याः प्राग्जन्मस्मृतिराश्वभूत्।
—महापुराण श्लो० ९१, पर्व ६। पृ० १२७

(ग) पुराणसार संग्रह २६–२७–१।६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया[६८] और अपने प्रति स्नेहमूर्ति पण्डिता परिचारिका को प्रदान किया। पण्डिता परिचारिका प्रस्तुत चित्रपट को लेकर राजपथ पर, जहाँ चक्रवर्ती वज्रसेन की वर्षगाँठ मनाने हेतु अनेक देशों के राजकुमार आ-जा रहे थे, खड़ी होगई।[६९] वज्रजंघ राजकुमार भी, जो पूर्वभव में ललिताङ्ग देव था, वहाँ आया हुआ था। उसने ज्यों ही वह चित्र-पट्ट देखा त्योंही उसे भी पूर्वभव की स्मृति जागृत हो गई। उसने चित्रपट्ट का सारा इतिवृत्त पण्डिता परिचारिका को बताया, और पण्डिता परिचारिका ने श्रीमती को निवेदन किया।[७०] श्रीमती की प्रेरणा से परिचारिका ने चक्रवर्तीसम्राट् वज्रसेन को श्रीमती और वज्रजंघ के पूर्वभव का परिचय प्रदान किया।[७१] चक्रवर्ती वज्रसेन ने 'श्रीमती' का वज्रजंघ के साथ पाणिग्रहण कर दिया।[७२]

---

६८. मया विलिखितं पूर्वभवसम्बन्धिपट्टकम्।
—महापुराण श्लो० १७० पर्व ६, पृ० १३३

६९. चक्रिणो वज्रसेनस्य वर्षग्रन्थिरभूत् तदा।
प्रस्तावादाययुस्तत्र, भूयांसो वसुधाधवाः॥
पण्डिता राजमार्गेऽथ, तमालेख्यपटं स्फुटम्।
विस्तार्य तस्थौ श्रीमत्या मनोरथमिवाऽलघुम्॥
—त्रिषष्ठि १।१।६४९–६५०

७०. अत्रास्मद्भवसम्बन्धः पूर्वोऽलेखि सविस्तरम्।
श्रीप्रभाधिपतां साक्षात् पश्यामीवेह मामिकाम्॥
अहो स्त्रीरूपमत्रेदं नितरामभिरोचते।
स्वयम्प्रभाङ्गसंवादि विचित्राभरणोज्ज्वलम्॥
—महापुराण श्लो० १२१–१२२ पर्व ७, पृ० १४८

(ख) आमेति पण्डिताऽप्युक्ता श्रीमत्याः पार्श्वमेत्य च।
तत्सर्वमाख्यत् हृदयविशल्यकरणौषधम्॥
—त्रिषष्ठि १।१।६८२

७१. पितुर्व्यज्ञपयत् तच्च, श्रीमती पण्डितामुखात्।
अस्वातन्त्र्यं कुलस्त्रीणां, धर्मो नैसर्गिको यतः॥
—त्रिषष्ठि १।१।६८३

७२. तद्गिरामुदितः सद्यः स्तनितेनेव वर्हिणः।
वज्रसेननृपो वज्रजङ्घमाजूहवत् ततः॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महापुराणकार ने भी प्रस्तुत प्रसंग को कुछ हेर-फेर के साथ निरूपित किया है, पर तथ्य यही है।[७३]

श्रीमती के साथ वज्रजंघ पुनः भोगों में आसक्त हुआ।[७४] सम्राट् सुवर्णजंघ ने वज्रजंघ को राज्य देकर स्वयं दीक्षा ग्रहण की।[७५] और चक्रवर्ती वज्रसेन ने भी अपने पुत्र पुष्कलपाल को राज्य देकर दीक्षा ली।[७६] वह तीर्थङ्कर हुए।[७७] चक्रवर्ती वज्रसेन के संयम

कुमारमूचे भूपालोऽस्मत्पुत्री श्रीमतीत्यसौ।
भवत्विदानीं भवतो, गृहिणी पूर्वजन्मवत्॥
तथेति प्रतिपन्ने च, कुमारेणोदवाहयत्।
श्रीमतीं भूपतिः प्रीतो, हरिणेवोदधिः श्रियम्॥

—त्रिषष्ठि १।१।६८५ से ६८७

(ख) ततः पाणौ महाबाहुः वज्रजङ्घोऽग्रहीन्मुदा।
श्रीमती तन्मृदुस्पर्शसुखामीलितलोचनः॥

—महापुराण श्लो० २४६, पर्व० ७, पृ० १६०

७३. महापुराण पर्व ६–७, पृ० १२२ से १६०।

७४. (क) विलसन् वज्रजङ्घोऽपि, श्रीमत्या सह कान्तया।
उवाह लीलया राज्यमम्भोजमिव कुञ्जरः॥

—त्रिषष्ठि १।१।६६१

(ख) महापुराण श्लो० १–३२, पर्व ८, पृ० १६७–१६६

७५. योग्यं ज्ञात्वा वज्रजङ्घं, स्वर्णजङ्घोऽथ भूपतिः।
राज्ये निवेशयामास, स्वयं दीक्षामुपाददे॥

—त्रिषष्ठि १।१।६६६

(ख) अभिषिच्य सुतं राज्ये वज्रजङ्घमतिष्ठिपत्॥५६
स राज्यभोगनिर्विण्णः तूर्णं यमधरान्तिके।
नृपैः सार्द्धं सहस्रार्द्धमितैर्दीक्षामुपाददे।

—महापुराण श्लो० ५६–५७, पर्व ८ पृ० १७१

७६. सूनोः पुष्कलपालस्य, दत्त्वा राज्यश्रियं निजाम्।
प्राव्राजीद् वज्रसेनोऽपि, जज्ञे तीर्थंकरश्च सः॥

—त्रिषष्ठि १।१।६६०

७७. त्रिषष्ठि १।१।६६०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेने के पश्चात् सीमाप्रान्तीय राजा पुष्करपाल की आज्ञा का उलंघन करने लगे। वज्रजंघ उसकी सहायतार्थ गया और शत्रुओं पर विजय वैजयन्ती फहराकर पुनः अपनी राजधानी लौट रहा था कि उसे ज्ञात हुआ कि प्रस्तुत अरण्य में दो मुनियों को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है और उनके दिव्य प्रभाव से दृष्टिविष सर्प भी निर्विष हो गया है।[७८] वज्रजंघ मुनियों के दर्शन हेतु गया। उपदेश सुन वैराग्य उत्पन्न हुआ।[७९] पुत्र को राज्य देकर संयम ग्रहण करूँगा, इस भावना के साथ वह वहाँ से प्रस्थान कर राजधानी पहुँचा।[८०] इधर पुत्र ने सोचा कि पिताजी जीते जी मुझे राज्य देंगे नहीं, तदर्थ उसने उसी रात्रि को वज्रजंघ के महल में जहरीला धुआँ फैलाया, जिसकी गंध से वज्रजंघ और 'श्रीमती' दोनों ही मृत्यु को प्राप्त हुए।[८१]

महापुराणकार आचार्य जिनसेन ने प्रस्तुत घटना का इस रूप में चित्रण किया है—"वज्रदन्त चक्रवर्ती ने अपने लघुभ्राता अमिततेज

---

७८. उत्पेदे केवलज्ञानं, द्वयोरत्राऽनगारयोः।
तत्र देवागमोद्योताद् दृग्विषो निर्विषोऽभवत्॥
—त्रिषष्ठि १।१।७०२

७९. त्रिषष्ठि १।१।७०८–७०९।

८०. तदिदानीं पुरीं गत्वा, दत्त्वा राज्यं च सूनवे।
हंसस्येव गतिं हंसः श्रयिष्येऽहं पितुर्गतिम्॥
संवादिन्या व्रतादानेऽनुस्यूतमनसेव सः।
सहितः श्रीमतीदेव्या, प्राप लोहार्गलपुरम्॥
—त्रिषष्ठि १।७१०–७११

८१. पुत्तेण रज्जकंखिणा वासघरे जोगधूवप्पयोगेण मारितो।
—आव० मल० वृ० प० १५८

विषधूपं व्यधात् पुत्रस्तयोस्तु सुखसुप्तयोः।
कस्तं निरोद्धुमीशः स्याद्, गृहादग्निमिवोत्थितम्?
तद्धूपधूमैरधिकैर्जीवाकर्षाङ्कुरैरिव।
घ्राणप्रविष्टैस्तौ सद्यो, दम्पती मृत्युमापतुः॥
—त्रिषष्ठि १।१।७१४–७१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के पुत्र पुण्डरीक को राज्य देकर दीक्षा ली। पुण्डरीक अल्पवयस्क था, अतः चक्रवर्ती की पत्नी लक्ष्मी ने वज्रजंघ को सन्देश भेजा।[८२] उस सन्देश से वह सहायतार्थ प्रस्थान करता है कि मार्ग में दो चारण लब्धिधारी मुनिवरों के दर्शन होते हैं। वह उन्हें आहार दान देता है।[८४] और मुनि वज्रजंघ व श्रीमती के आगामी भावों का निरूपण

---

८२. चक्रवर्ती वनं यातः सपुत्रपरिवारकः ।
पुण्डरीकस्तु राज्येस्मिन् पुण्डरीकाननः स्थितः ।।
क्व चक्रवर्तिनो राज्यं क्वायं बालोऽतिदुर्बलः ।
तदयं पुङ्गवैर्धार्ये भरे दम्यो नियोजितः ।।
बालोऽयमबले चावां राज्यञ्चेदमनायकम् ।
विशीर्णप्रायमेतस्य पालनं त्वयि तिष्ठते ।।
अकालहरणं तस्मात् आगन्तव्यं महाधिया ।
त्वयि त्वत्सन्निधानेन भूयाद् राज्यमविप्लवम् ।।
—महापुराण श्लो० ९५–९८ पर्व० ८ पृ० १७५

(ख) नगर्य्यां पुण्डरीकाह्वं प्रतिष्ठाप्य स्वपुत्रजम् ।
प्रवव्राज नरेन्द्रोन्दो बहुभिः क्षत्रियैरसौ ।।
—पुराणसार संग्रह दामनन्दी श्लोक० ३२, स० २, पृ० २४

८३. तस्मिन्नेवाह्नि सोऽह्नाय प्रस्थानमकरोत् कृती ।
—महापुराण श्लो० ११८ पर्व० ८ पृ० १७७

(ख) चिन्तागतिमनोगत्योस्तयोः श्रुत्वा तु वाचिकम् ।
निरगातां ससैन्यौ तु तूर्णं मतिवरोदितौ ।।
—पुराणसार श्लो० ३६ सर्ग २, पृ० २४

८४. ततो दमधराभिख्यः श्रीमानम्बरचारणः ।
समं सागरसेनेन तन्निवेशमुपाययौ ।।
—महापुराण श्लो० १६७, पर्व० ८, पृ० १८१

श्रद्धादिगुणसम्पत्या गुणवद्भ्यां विशुद्धिभाक् ।
दत्त्वा विधिवदाहारं पञ्चाश्चर्याण्यवाप सः ।।
—महापुराण श्लो० १७३, पर्व ८, पृ० १८२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हुए बताते हैं कि सम्राट् आप आठवें भव में तीर्थङ्कर बनेंगे।[८५] 'श्रीमती' का जीव प्रथम दानधर्म का प्रवर्तक श्रेयांस होगा।[८६] मुनि की भविष्यवाणी को सुनकर दोनों अत्यन्त आह्लादित होते हैं।

वहाँ से सम्राट् वज्रजंघ पुण्डरीकिणी नगरी जाकर महारानी को आश्वस्त करते हैं और उनके राज्य की सुव्यवस्था कर पुनः अपने नगर लौटते हैं।[८७]

एक दिन सम्राट् का शयनागार अगर आदि सुगन्धित द्रव्यों की तीव्र गन्ध से महक रहा था। द्वारपाल उस दिन गवाक्ष खोलना भूल गया, जिसमें धूप के धुएँ के कारण श्वास रुक जाने से दोनों की मृत्यु हो गई।[८८]

(ख) दत्वा सागरसेनाय दानं दमवराय च।
आदाय नवपुण्यानि सम्प्राप्तौ पुण्डरीकिणीम् ॥
—पुराणसार श्लो० ३८ सर्ग २, पृ० २४

८५. इतोष्टमे भवे भाविन्यपुनर्भवतां भवान्।
भवितामी च तत्रैव भवे सेत्स्यन्त्यसंशयम् ॥
—महापुराण श्लो० २४४। पर्व ८, पृ० १८७

८६. श्रीमती च भवत्तीर्थे दानतीर्थप्रवर्तकः।
श्रेयान् भूत्वा परं श्रेयः श्रयिष्यति न संशयः ॥
—महापुराण श्लो० २४६ पर्व ८, पृ० १८७

८७. दृष्ट्वा देवीं कुमारञ्चाप्यनुशिष्य वचोऽमृतैः।
किञ्चित्कालमुषित्वात्र जग्मतुः स्वपुरं पुनः ॥
—पुराणसार श्लोक ४० द्वि० स० पृ० २४

८८. कालागुरुकधूपाढ्ये शयितौ गर्भवेश्मनि।
मृत्वोत्तरकुरुष्वास्तामाशु दानेन दम्पती ॥
—पुराणसार श्लो० ४१ पर्व० २, पृ० २४

(ख) अथ कालागुरूद्दामधूपधूमाधिवासिते।
मणिप्रदीपकोद्योतदूरीकृततमस्तरे ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[७] युगल

वहाँ से दोनों ही आयुपूर्ण कर उत्तर कुरु में युगल-युगलिनी बने।[८९] इसके अतिरिक्त श्वेताम्बर ग्रन्थों में अन्य वर्णन नहीं है।

महापुराण व पुराणसार के मन्तव्यानुसार उस समय उस युगल-युगलिनी को सूर्य-प्रभदेव के गगनगामी विमान को निहारकर जातिस्मरण होता है[९०] और उसी समय वहाँ पर लब्धिधारी मुनि आते हैं।[९१] नमन कर वे उनसे पूछते हैं कि 'हे प्रभो! आप कौन हैं और कहाँ से आये हैं?'

तत्र वातायनद्वारपिधानारुद्धधूमके ।
केशसंस्कारधूपोद्यद्धूमेन क्षणमूर्च्छितौ ।।
निरुद्धोच्छ्वासदौःस्थित्यात् अन्तः किञ्चिदिवाकुलौ ।
दम्पती तौ निशामध्ये दीर्घनिद्रामुपेयतुः ।।

—महापुराण श्लो० २१, २६, २७, २८ पर्व ६, पृ० १६२

८६. अथोत्तरकुरुष्वेतावुत्पन्नौ युग्मरूपिणौ ।
एकचिन्ताविपन्नानां गतिरेका हि जायते ।।

—त्रिषष्ठि १।१।७१६

(ख) मरिऊण उत्तरकुराए सभारियो मिहुणगो जातो ।

—आवश्यक मल० वृ० पृ० १५८

(ग) मरिऊण उत्तरकुराए सभारिओ मिहुणगो जाओ ।

—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति पृ० ११६।१

९०. सूर्यप्रभस्य देवस्य नभोयायि विमानकम् ।
दृष्ट्वा जातिस्मरो भूत्वा प्रबुद्धः प्रियया समम् ।।

—महापुराण श्लो० ६५, पर्व ६, पृ० १६८

(ख) कदाचित्सूर्यदेवस्य दृष्ट्वा यान [यि] विमानकम् ।
अथ सस्मरतुर्जातिमन्योऽन्यप्रियवर्तिनौ ।।

—पुराणसार दाम० श्लो० ४४ पर्व २, पृ० २६

९१. तावच्चारणयोर्युग्मं दूरादागच्छदैक्षत ।
तञ्च तावनुगृह्णन्तौ व्योम्नः समवतेरतुः ।।

—महापुराण श्लो० ६६ पर्व ६, पृ० १६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर में ज्येष्ठ मुनि ने बतलाया कि 'पूर्व भव में जिस समय तुम्हारा जीव महाबल राजा था उस समय मैं तुम्हारा स्वयंबुद्ध मन्त्री था।[९२] संयम धारण कर मैं सौधर्म स्वर्ग में स्वयंप्रभ विमान में मणिचूल नामक देव बना। वहाँ से प्रच्युत होकर मैं पुण्डरीकिणी नगरी में राजा प्रियसेन का ज्येष्ठपुत्र प्रीतिकर हुआ। मेरी माता का नाम सुन्दरी है और लघुभ्राता का नाम प्रीतिदेव है, जो संप्रति मेरे साथ ही हैं।[९३] हम दोनों ही भ्राताओं ने स्वयंप्रभ जिनराज के समीप दीक्षा लेकर तपोबल से अवधिज्ञान तथा चारण ऋद्धि प्राप्त की है।[९४] आपको यहाँ जानकर हम आपको सम्यक्त्व रूपी रत्न देने के लिए आये हैं।'

(ख) आगतौ चारणौ वीक्ष्य सन्निविष्टौ शिलातले।
मूर्ध्ना प्रणम्य पप्रच्छ, के यूयमागताः कुतः ?
—पुराणसार श्लो० ४५, पर्व २, पृ० २६

९२. त्वं विद्धि मां स्वयंबुद्धं यतोऽबुद्धाः प्रबुद्ध धीः।
महाबलभवे जैनं धर्मं कर्मनिवर्हणम्॥
—महापुराण श्लो० १०५, पर्व० ६, पृ० १६६

(ख) उवाचाहं स्वयंबुद्धस्तत्राकार्षं सुसंयमम्।
सौधर्मे मणिचूलाख्यो देव आसं स्वयम्प्रभे॥
—पुराणसार ४६।२।२६

९३. महापुराण श्लो० १०८–१०९ पर्व० ६ पृ० १६६।

(ख) प्रच्युतः पुण्डरीकिण्यां सुन्दरी-प्रियसेनयोः।
भ्राता प्रीतिसुदेवोऽयं ज्यायान् प्रीतिकरोऽस्म्यहम्॥
—पुराणसार ४७।२।२६

९४. स्वयम्प्रभजिनोपान्ते दीक्षित्वा वामलप्स्वहि।
सावधिज्ञानमाकाशचारणत्वं तपोबलात्॥
—महापुराण ११०।६।१६६

(ख) स्वयम्प्रभार्हतः पार्श्वे दीक्षितौ प्राप्तलीलिकौ।
—पुराणसार ४८।२।२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्त्व रूपी रत्न से बढ़कर विश्व में न कोई वस्तु है, न हुई है और न होगी ही। इसी से भव्य प्राणियों ने मुक्ति प्राप्त की है तथा आगे प्राप्त करेंगे। अतएव सम्यक्त्व सबसे श्रेष्ठ है।[९५] जब देशनालब्धि और काललब्धि आदि बहिरंग कारण और करण लब्धि-रूप अन्तरंग कारण मिलता है तभी भव्यप्राणी विशुद्ध सम्यग्दर्शन का पात्र बन सकता है।[९६] जो पुरुष एक अन्तर्मुहूर्त के लिए भी सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है वह इस संसार रूपी बेल को काट कर बहुत ही लघु कर देता है।[९७] इस प्रकार सम्यग्दर्शन के महत्त्व को समझाकर और दोनों को रत्नत्रय में आद्य-रत्न सम्यक्त्व को देकर वे चारणमुनि अपने स्थान चले गये।[९८]

---

९५. इतोऽन्यदुत्तरं नास्ति न भूतं न भविष्यति।
इह सेत्स्यन्ति सिद्धाश्च तस्मात्सम्यक्त्वमुत्तमम् ॥
—पुराणसार ४९।२।२६

९६. देशनाकाललब्ध्यादिबाह्यकारणसम्पदि।
अन्तःकरणसामग्र्यां भव्यात्मा स्याद् विशुद्धकृत् ॥
—महापुराण ११६।९।१९९

९७. लब्धसद्दर्शनो जीवो मुहूर्त्तमपि पश्य यः।
संसारलतिकां छित्त्वा कुरुते ह्रासिनीमसौ ॥
—महापुराण १३५।९।२०१

९८. दत्वा ताभ्यां त्रिरत्नाद्यं गताम्बरचारिणौ।
—पुराणसार ५१।२।२६

(ख) इति प्रीतिङ्करार्चार्यवचनं स प्रमाणयन्।
सजानिरादधे सम्यग्दर्शनं प्रीतमानसः ॥
पुनर्दर्शनमस्त्वार्य! सद्धर्मं मा स्म विस्मरः।
इत्युक्त्वान्तर्हितौ सद्यः चारणौ व्योमचारणौ ॥
—महापुराण १४८।१५७।९। पृ० २०२–२०३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[८] सौधर्मकल्प

वहाँ से वे आयु पूर्ण कर सौधर्मकल्प में देव बने।[९९] महापुराण तथा पुराणसार में उनका नाम श्रीधर देव लिखा है।[१००]

[९] जीवानन्द वैद्य

वहाँ से च्यवकर धन्नासार्थवाह का जीव जम्बूद्वीप के क्षितिप्रतिष्ठ नगर में सुविधि वैद्य का पुत्र जीवानन्द वैद्य बना।[१०१] उस समय वहाँ पाँच अन्य जीव भी उत्पन्न होते हैं। प्रथम सम्राट्पुत्र महीधर,

---

९९. ततो सोहम्मे कप्पे देवो उववन्नो।
—आवश्यक निर्युक्ति, मल० वृ० १५८

(ख) तओ सोहम्मे कप्पे देवो जाओ।
—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, पृ० ११६।१

(ग) क्षेत्रानुरूपमायुश्च पूरयित्वा तथा युतौ।
तौ विपद्योदपद्येतां, सौधर्मे स्नेहलौ सुरौ॥
—त्रिषष्ठि १।१।७१७

(घ) अन्ते गृहीतसम्यक्त्वौ मृत्वा सौधर्ममीयतुः।
—पुराणसार ५१।२।२६

१००. विमाने श्रीप्रभे तत्र नित्यालोके स्फुरत्प्रभः।
स श्रीमान् बज्रजङ्घार्यः श्रीधराख्यः सुरोऽभवत्॥
—महापुराण १८५।९।२०६

(ख) श्रीप्रभे श्रीधरो जज्ञे आर्यो देवः स्वयम्प्रभे।
सम्यक्त्वात्स्त्रैणमुज्झित्वा साऽऽर्या जातः स्वयंप्रभः॥
—पुराणसार ५२।२।२६

१०१. ततो आउक्खए चइऊण महाविदेहवासे खितिपइट्ठिते नगरे विज्जपुत्तो आयातो।
—आवश्यक मल० वृत्ति० पृ० १५८

(ख) आवश्यक चूर्णि० पृ० १३२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय मन्त्रीपुत्र सुबुद्धि, तृतीय सार्थवाहपुत्र पूर्णभद्र, चतुर्थ श्रेष्ठि-पुत्र गुणाकर और पाँचवाँ ईश्वरदत्तपुत्र केशव [श्रीमती का जीव] इन छहों में पय-पानी सा प्रेम था।[१०२]

अपने पिता की तरह जीवानन्द भी आयुर्वेदविद्या में प्रवीण था।[१०३] उसकी प्रतिभा की तेजस्विता से सभी प्रभावित थे। एक दिन सभी स्नेही साथी वार्तालाप कर रहे थे कि वहाँ एक दीर्घतपस्वी भिक्षा के लिए आये। वे गृहस्थाश्रम में पृथ्वीपाल राजा के पुत्र थे, जिन्होंने राज्यश्री को त्यागकर उग्रतपस्या प्रारम्भ की थी। असमय व अपथ्य भोजन के सेवन से वे कृमि-कुष्ठ की भयंकर व्याधि से ग्रसित हो गये थे।[१०४] उन्हें निहारकर समाट् पुत्र महीधर ने कहा—मित्रवर !

---

१०२. (क) उत्तरकुरु सोहम्मे विदेह तेगिच्छियस्स तत्थ सुतो।
रायसुयसेट्ठिमच्चासत्थाहसुया वयंसा से॥
—आवश्यक नियुक्ति गा० १६६

(ख) जद्दिवसं तु जातो तद्दिवसमेगाहजाया से इमे चत्तारि वयंसया अणुरत्ता अविरत्ता, तं जहा—रायपुत्तो, सेट्ठिपुत्तो, अमच्चपुत्तो, सत्थवाहपुत्तोत्ति ! ते सहसंवड्ढिता सहपंसुकीलिया, धणसत्थवाहजीवोऽवि महाविज्जो जातो।
—आवश्यक मल० वृ० प० १५८

(ग) आवश्यक चूर्णि, पृ० १३२।

(घ) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति पृ० ११६

(ङ) त्रिषष्ठि १।१।७१६ से ७२८

(च) कल्पसूत्रार्थ प्रबोधिनी—राजेन्द्रसूरि० पृ० २२१

१०३. विदाञ्चकाराऽऽयुर्वेदं जीवानन्दोऽपि पैतृकम्।
अष्टाङ्गमौषधीश्चाऽपि, रसवीर्यविपाकतः॥
—त्रिषष्ठि १।१।७२६

१०४. एकदा वैद्यपुत्रस्य, जीवानन्दस्य मन्दिरे।
एतेषां तिष्ठतामेकः साधुर्भिक्षार्थमाययौ॥
पृथ्वीपालस्य राज्ञः स, सूनुर्नाम्ना गुणाकरः।
राज्यं मलमिवोत्सृज्य शमसाम्राज्यमाददे॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप अन्य की चिकित्सा करते हैं, चिकित्सा करने में कुशल भी हैं, पर मुझे अत्यन्त परिताप है कि आपके अन्तर्मानस में दया की निर्मल स्रोतस्विनी प्रवाहित नहीं हो रही है। कृमिकुष्ठ रोग से ग्रसित मुनि को देखकर भी आप चिकित्साहेतु प्रवृत्त नहीं हो रहे हैं।[१०५ख]

प्रत्युत्तर में जीवानन्द ने कहा—मित्र! तुम्हारा कथन सत्य है;

सरिदोघ इव ग्रीष्मातपेन तपसा कृशः।
कृमिकुष्ठाभिभूतस्य सोऽकालापथ्यभोजनात्॥
सर्वाङ्गीणं कृमिकुष्ठाधिष्ठितोऽपि स भेषजम्।
ययाचे न क्वचित् कायानपेक्षा हि मुमुक्षवः॥
गोमूत्रिकाविधानेन, गेहाद् गेहं परिभ्रमन्।
षष्ठस्य पारणे दृष्टः, स तैर्निजगृहाङ्गणे॥
—त्रिषष्ठि १।१। ७३२ से ७३६

१०५. वेज्जसुयस्स य गेहे किमिकुट्ठोवद्दुयं जइ दट्ठुं।
वेंति य ते विज्जसुयं करेहि एयस्स तेगिच्छं॥
—आवश्यकनिर्युक्ति गा० १७०

(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० १३२

(ग) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११६

(घ) ते वयंसया अन्नया कयाइ तस्स विज्जस्स घरे एगतो सहिया सन्निसन्ना अच्छन्ति, तत्थ साहू महप्पा किमिकुट्ठेण गहितो भिक्खानिमित्तमइगतो, तेहिं सप्पणयं सहासं सो विज्जो भण्णइ-तुब्भेहिं नाम सव्वो लोगो खाइयव्वो, न तुब्भेहिं तवस्सिस्स वा अणाहस्स वा किरिया कायव्वा।
—आवश्यक मल० वृ० पृ० १५८

(ङ) महीधर कुमारेण, स किञ्चित् परिहासिना।
जीवानन्दो निजगदे, जगदेकभिषक् ततः।
अस्ति व्याधेः परिज्ञानं ज्ञानमस्त्यौषधस्य च।
चिकित्साकौशलं चाऽस्ति, नास्ति वः केवलं कृपा॥
—त्रिषष्ठि १।१।७३७–७३८

(च) कल्पार्थ प्रबोधिनी पृ० २२१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर इस रोग की चिकित्सा के लिए जिन औषधियों की आवश्यकता है, वे मेरे पास नहीं हैं।[१०६]

मित्रों ने कहा—बताइये किन-किन औषधियों की आवश्यकता है? वे कहाँ पर उपलब्ध हो सकेंगी? हम मूल्य देंगे और जैसे भी होगा, लाने का प्रयास करेंगे।

जीवानन्द ने कहा—रत्नकम्बल, गोशीर्षचन्दन, और लक्षपाक तैल। पूर्व की दो औषधियाँ मेरे पास नहीं हैं।[१०७]

उसी क्षण वे पाँचों साथी औषध लाने के लिए प्रस्थित हुए। औषधियों की अन्वेषणा करते हुए एक श्रेष्ठी की विपणि पर पहुँचे।[१०८] श्रेष्ठी से औषधहेतु जिज्ञासा व्यक्त करने पर श्रेष्ठी ने

---

१०६. सो भणइ-करेमि, किं पुण मम ओसहाणि काइंवि नत्थि।
—आवश्यक मल० वृ० पृ० १५८

(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० १३२

(ग) चिकित्सनीय एवाऽहो!, महामुनिरयं मया।
औषधानामसामग्री, किन्तु यात्यन्तरायताम्॥
—त्रिषष्टि० १।१।७४५

१०७. ते भणन्ति अम्हे मोल्लं देमो, किं ओसह? जाइज्जउ, सो भणइ—कम्बलरयणं गोसीसचन्दणं, तइयं पुण जं सयसहस्सपागतेल्लं तं ममवि अत्थि।
—आवश्यक मल० वृ० पृ० १५८

(ख) आवश्यकचूर्णि पृ० १३२।

(ग) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति पृ० ११६।

(घ) तत्रैकं लक्षपाकं मे, तैलमस्तीह नाऽस्ति तु।
गोशीर्षचन्दनं रत्नकम्बलश्चाऽऽनयन्तु तत्॥
—त्रिषष्ठि १।१।७४६

१०८. ताहे मग्गिउं पवत्ता, आगमियं च णेहिं जहा अमुगस्स वाणियगस्स अत्थि दोऽवि एयाणि, ते गया तस्स सगासं दो लक्खाणि घेत्तुं।
—आवश्यक मल० वृत्ति पृ० १५८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहा—प्रत्येक वस्तु का मूल्य एक-एक लाख दीनार है। वे उस मूल्य को देने के लिए ज्योंही प्रस्तुत हुए, त्योंही श्रेष्ठी ने प्रश्न किया—ये अमूल्य वस्तुएँ किस लिए चाहिएँ? उन्होंने बताया—मुनि की चिकित्सा के लिए। मुनि का नाम सुनते ही श्रेष्ठी सोचने लगा कि "इन युवकों की धार्मिक निष्ठा अपूर्व है।"[१०९] उसने बिना मूल्य लिये औषधियाँ देदीं। वे उन वस्तुओं को लेकर वैद्य के पास गये।

जीवानन्द वैद्य भी अपने स्नेही साथियों के साथ उन औषधियों को तथा मृत-गोचर्म को लेकर उद्यान में पहुँचा, जहाँ मुनि ध्यान मुद्रा में अवस्थित थे।[११०] उन्होंने मुनि को वन्दन किया और उनकी स्वीकृति

(ख) आवश्यकचूर्णि पृ० १३२।

(ग) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति ११६।

(घ) आनेष्यामो वयमिति, प्रोच्य पञ्चाऽपि तत्क्षणम्।
ते ययुर्विपणिश्रेणीं स्वस्थानं सोऽप्यगान्मुनिः॥
रत्नकम्बल-गोशीर्षं, मूल्यमादाय यच्छ नः।
इत्युक्तस्तैर्वणिग्वृद्धस्ते ददानोऽब्रवीदिदम्॥
—त्रिषष्ठि १।१।७४७–७४८

१०९. ततो वाणियगो ससंभन्तो भणति—किं देमि? ते भणन्ति—कम्बल-रयणं गोसीसचन्दणं च। तेण भण्णइ किं एएहिं कज्जं? ते भणन्ति साहुस्स किरिया कायव्वा। तेण भण्णइ—एवं, तो अलाहि मम मोल्लेणं, इहरहा चेव गेण्हह, करेह साहुणो किरियं।
—आवश्यक मल० पृ० १५९

(ख) तेल्लं तेगिच्छिसुतो कम्बलगं चन्दणं च वाणियतो।
—आवश्यक निर्युक्ति गा० १७१

(ग) आवश्यक चूर्णि, पृ० १३३

(घ) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति पृ० ११६।

(ङ) त्रिषष्ठि १।१।७५०–७५६।

११०. (क) ते विज्जसुयप्पभिइणो सव्वे घेत्तूण ताणि ओसहाणि गया साहुणो पासं जत्थ सो उज्जाणे पडिमं ठितो, पासन्ति पडिमागयं साहुं।
—आवश्यक मल० प० १५९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिए बिना ही आरोग्य प्रदान करने हेतु सर्वप्रथम लक्षपाक तैल से मर्दन किया। उष्णवीर्य तैल के प्रभाव से शरीरस्थ कृमियाँ बाहर निकलने लगीं तो उन्होंने शीतवीर्य रत्नकम्बल से मुनि के शरीर को आच्छादित कर दिया, जिससे वे शरीरस्थ कृमि रत्न-कम्बल में आगईं। उसके पश्चात् रत्न कम्बल की कृमियों को मृत-गोचर्म में स्थापित कर दिया, जिससे उनका प्राणघात न हो। उसके पश्चात् पुनः मर्दन किया और रत्नकम्बल से आच्छादित करने पर मांसस्थ कृमियाँ निकल आईं। तृतीय बार पुनः मर्दन किया और रत्नकम्बल ओढ़ा देने पर अस्थिगत कृमियाँ निकल गईं। जब शरीर कृमियों से मुक्त हो गया तो उस पर गोशीर्षचन्दन का लेप किया, जिससे मुनि पूर्ण स्वस्थ हो गये।[१११]

मुनि की स्वस्थता देखकर छहों मित्र अत्यन्त प्रमुदित हुए। मुनि के तात्त्विक प्रवचन को सुन कर छहों को संसार से विरक्ति हुई, उन्होंने दीक्षा ग्रहण की और उत्कृष्ट संयम की साधना की।[११२]

---

१११. ताहे तेल्लेण सो साहू पढमं अब्भिगितो, तं चेव तेल्लं रोमकूवेहिं सव्वं अइगयं, तम्मि य अइगए किमिया सव्वे संखुद्धा ताहे ते निग्गए, दट्ठूण कंबलरयणेण सो साहू पाउत्तो, तं सीयलं, तेल्लं च उण्हवीरियं ते किमिया तत्थ लग्गा, ताहे पुव्वाणिय गोकडेवरे पप्फोडियं, ते सव्वे पडिया, ततो सो साहू चन्दणेण लित्तो, जातो समासत्थो, एवं तिन्निवारे अब्भंगिऊण सो साहू तेहिं नीरोगो कतो।

—आवश्यक मल० वृ० प० १५९

(ख) त्रिषष्ठि १।१।७५८ से ७७६।

११२. (क) पच्छा ते सड्ढा जाया, पच्छा समणा।

—आवश्यक नि० मल० वृत्ति, पृ० १५९

(ख) ते पच्छा साहू जाता।

—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति पृ० ११७

(ग) ते षडप्येकदा जातसंवेगाः साधुसन्निधौ।
धीमन्तो जगृहुर्दीक्षां, मर्त्यजन्मतरोः फलम्॥

—त्रिषष्ठि १।१।७८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महापुराण और पुराणसार में जीवानन्द वैद्य का भव नहीं बताया है। उन्होंने लिखा है कि देवलोक से च्युत होकर जम्बूद्वीपस्थ वत्सकावती देश की सुसीमा नगरी में वह सुदृष्टि राजा और सुन्दर-नन्दा रानी की कुक्षि से सुविधि पुत्र हुआ, और श्रीमती का जीव उसी का पुत्र केशव हुआ।[113] केशव के प्रेम के कारण प्रारम्भ में उसके पिता सुविधि ने संयम न लेकर श्रावक व्रत स्वीकार किया[114] और अन्त में दीक्षा लेकर संलेखनायुक्त समाधि मरण प्राप्त किया।[115]

[१०] अच्युत देवलोक

आयु पूर्ण कर जीवानन्द का जीव तथा अन्य साथी बारहवें देवलोक में उत्पन्न हुए।[116]

---

११३. श्रीधरोऽथ दिवश्च्युत्वा जम्बूद्वीपमुपाश्रिते।
प्राग्विदेहे महावत्सविषये स्वर्गसन्निभे॥
सुसीमानगरे जज्ञे सुदृष्टिनृपतेः सुतः।
मातुः सुन्दरनन्दायाः सुविधिर्नाम पुण्यधीः॥
—महापुराण श्लो० १२१–१२२ पर्व १०, पृ० २१८

(ख) स समुद्रोपमं भोगं भुक्त्वाऽतः श्रीधरश्च्युतः।
प्राग्विदेहेषु वत्साह्वे सुसीमायामुभौ पुरी॥
देव्यां सुन्दरनन्दायां सुदृष्टेः सुविधिः सुतः।
तत्सूनुः केशवो नाम्ना सुन्दर्यामितरोऽभवत्॥
—पुराणसार ६१।६२।२।२८

११४. नृपस्तु सुविधिः पुत्रस्नेहाद् गार्हस्थ्यमत्यजन्।
उत्कृष्टोपासकस्थाने तपस्तेपे सुदुश्चरम्॥
—महापुराण १५८।१०।२२२

(ख) सुविधिः केशवस्नेहादुत्कृष्टः श्रावकोऽभवत्।
—पुराणसार ६५।२।३०

११५. अथावसाने नैर्ग्रन्थीं प्रव्रज्यामुपसेदिवान्।
सुविधिर्विधिनाराध्य, मुक्तिमार्गमनुत्तरम्॥
—महापुराण १६९।१०।२२२

११६. साहुं तिगिच्छिऊणं सामन्नं देवलोगगमणं च।
—आवश्यक निर्युक्ति गा० १७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महापुराण और पुराणसार के अनुसार भी सुविधि का जीव बारहवें देवलोक में ही उत्पन्न हुआ।[११७]

[११] वज्रनाभ

जीवानन्द का जीव देवलोक की आयु समाप्त होने पर पुष्कलावती विजय की पुण्डरीकिणी नगरी के अधिपति वज्रसेन राजा की धारिणी रानी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ।[११८] उत्पन्न होते

(ख) अहाउयं पालइत्ता तम्मूलागं पंचवि जणा अच्चुए उववण्णा।

—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, ११७

(ग) ततो अहाउयं पालइत्ता सामण्णं, तं मूलागं पंचवि जणा अच्चुए कप्पे देवा उववन्ना।

—आवश्यक मल० वृ० प० १५६

षडपि द्वादशे कल्पेऽच्युतनामनि तेऽभवन्।
शक्रसामानिकास्तादृग्, न सामान्यफलं तपः॥

—त्रिषष्टि० १।१।७८६

११७. समाधिना तनुत्यागात् अच्युतेन्द्रोऽभवद् विभुः।
द्वाविंशत्यब्धिसंख्यातपरमायुर्महर्द्धिकः॥

—महापुराण, १७०।१०।२२२

(ख) समुत्पेदेऽच्युते कल्पे प्राप्य तत्र प्रतीन्द्रिताम्॥

—पुराणसार ६६।२।३०

११८. पुण्डरिगिणिए य चुया ततो सुया वयरसेणस्स।

—आवश्यक निर्युक्ति गा० १७२

(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० १३३।

(ग) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११७।

(घ) ततो देवलोगातो आउक्खए चइऊण इहेव जम्बुद्दीवे दीवे पुव्वविदेहे पुक्खलावइविजए पुंडरिगिणीए नयरीए वइरसेणरन्नो धारिणीए देवीए उदरे पढमो वइरनाभो नाम पुत्तो जातो, जो पुव्वभवे विज्जो आसि।

—आवश्यक मल० वृ० पृ० १५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही माता ने चौदह महास्वप्न देखे। जन्म होने पर पुत्र का ना नाम "वज्रनाभ" रखा। पूर्व के पाँचों साथियों में से चार क्रमशः बाहु, सुबाहु, पीठ और महापीठ, नामक उनके भ्राता हुए और एक उनका सारथी हुआ।[११९]

अपने ज्येष्ठ पुत्र वज्रनाभ को राज्य देकर सम्राट् वज्रसेन ने संयम ग्रहण किया, उत्कृष्ट संयम की साधना कर कैवल्य प्राप्त किया तथा तीर्थ की संस्थापना कर वे तीर्थङ्कर बने।[१२०]

सम्राट् वज्रनाभ पूर्वभव में मुनि की सेवा शुश्रूषा करने के फलस्वरूप षट्खण्ड के अधिपति चक्रवर्ती सम्राट् बने और शेष भ्राता माण्डलिक राजा हुए।[१२१] दीर्घकाल तक राज्य श्री का उपभोग करने के पश्चात् अपने पूज्य पिता तीर्थङ्कर वज्रसेन के प्रभावपूर्ण प्रवचनों को सुनकर उनके मानस में, वैराग्य का उदधि उछालें मारने लगा।

---

११९. पढमोऽत्थ वयरनाहो बाहु सुबाहु य पीढ महपीढे।

—आवश्यक निर्युक्ति गा० १७३

(ख) त्रिषष्ठि० १।१।७९१ से ७९५।

(ग) आद्य : पीठो महापीठः सुबाहुश्च तृतीयकः।
तूर्योऽथ महाबाहु भ्रातरः पूर्वबान्धवाः॥

—पुराणसार ७०।२।३०

१२०. तेसिं पिया तित्थयरो निक्खंता तोऽवि तत्थेव।

—आवश्यक निर्युक्ति गा० १७३

१२१. (क) वइरो चक्की जाओ, तेणं साहुवेयावच्चेण चक्कवट्टीभोया उदिण्णा, अवसेसा चत्तारि मंडलिया रायाणो।

—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति ११८।१

(ख) वयरनाभो चक्कवट्टी जातो, इयरे चत्तारि मंडलिया रायणो, एवं सो वयरनाभो साहुवेयावच्चप्पभावेण उइन्ने चक्कवट्टिभोगे भुंजइ।

—आवश्यक मल० वृ० पृ० १५९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने प्रिय लघु-भ्राताओं तथा सारथी के साथ वज्रनाभ चक्रवर्ती ने प्रव्रज्या ग्रहण की।[१२२]

संयम ग्रहण करने के पश्चात् वज्रनाभ ने आगमों का गम्भीर अनुशीलन-परिशीलन करते हुए चौदह पूर्व तक अध्ययन किया और अन्य शेष भ्राताओं ने एकादश अङ्गों का।[१२३] अध्ययन के साथ ही उन्होंने उत्कृष्ट तप तथा अनेक चामत्कारिक लब्धियाँ प्राप्त कीं तथा अरिहन्त, सिद्ध, प्रवचन-प्रभृति बीस निमित्तों की आराधना से तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध किया।[१२४]

---

१२२. इतो य तित्थयरवयरसेणस्स समोसरणं सो पिउपायमूलं चउहिं वि सहोअरेहिं सम्मं पव्वइतो।

—आवश्यक मल० वृ० प० १५९

(ख) दत्वैश्यं वज्रदन्ताय पीठाद्यैः भ्रातृभिः सह।
संयमे स्वपितुस्तीर्थे तस्थौ सधनदेवकः।

—पुराणसार ७४।२।३०

१२३. पढमो चउदसपुव्वी—

—आवश्यक निर्युक्ति० गा० १७४

(ख) तत्थ वइरनाभेण चोद्दस पुव्वाणि अहिज्जियाणि।

—आवश्यक चूर्णि० पृ० १३३

(ग) तत्थ वइरनाभेण चोद्दसपुव्वा अहिज्जिया, सेसावि चउरो एक्कारसंगविऊ जाया।

—आवश्यक मल० वृ० १६०।१

(घ) श्रुतसागरपारीणो, वज्रनाभोऽभवत् क्रमात्।
प्रत्यक्षा द्वादशाङ्गीव, जङ्गमैकाङ्गतां गता॥
एकादशाङ्ग्याः पारीणा, जाता बाह्वादयोऽपि ते।
क्षयोपशमवैचित्र्याच्चित्रा हि श्रुतसम्पदः॥

त्रिषष्ठि० १।१।८३६।८३७

१२४. वयरनाभेण विसुद्धपरिणामेणं वीसहिं ठाणेहिं तित्थयरनामगोत्तं कम्मं बद्धं।

—आवश्यक मल० वृ० प० १६०।१

(ख) त्रिषष्ठि० १।१।८८२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यक निर्युक्ति, आवश्यक चूर्णि आदि के अनुसार प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर के जीव ने बीस ही स्थानों की आराधना व साधना की। अन्य तीर्थङ्करों के जीवों ने एक, दो, तीन आदि[१२५] की आराधना करके ही तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध किया।

महापुराण व पुराणसार प्रभृति दिगम्बर-परम्परा के ग्रन्थों में बीस[१२६] स्थानों के बदले सोलह भावनाओं का उल्लेख किया गया है[१२७] किन्तु शाब्दिक दृष्टि से अन्तर होने पर भी दोनों में भावना की दृष्टि से विशेष कोई अन्तर नहीं है।

---

१२५. पढमो तित्थयरत्तं वीसहिं ठाणेहिं कासीय।
—आवश्यक निर्युक्ति गा० १७५

(ख) पुरिमेण य पच्छिमेण य एते सव्वेऽवि फासिया।
ठाणा मज्झिमएहिं जिणेहिं एगं दो तिन्नि सव्वे वा॥
—आवश्यक चूर्णि २–१०६ पृ० १३५

१२६. अरहंत सिद्धपवयणगुरुथेरबहुस्सुएतवस्सीसु।
वच्छल्लया य एसिं अभिक्खनाणोवयोगे य॥
दंसणविणए आवस्सए य सीलव्वए निरइयारो।
खणलवतवच्चियाए वेयावच्चे समाही य॥
अप्पुव्वनाणगहणे सुयभत्ती पवयणे पहावणया।
एएहिं कारणेहिं तित्थयरत्तं लहइ जीवो॥
—आवश्यक निर्युक्ति० १७६ से १७८

(ख) णाया धम्मकहाओ श्रु० १।अ० ८

१२७. ततोऽसौ भावयामास भावितात्मा सुधीरधीः।
स्वगुरोर्निकटे तीर्थकृत्त्वस्याङ्गानि षोडश॥
सद्दृष्टि विनयं शीलव्रतेष्वनतिचारताम्।
ज्ञानोपयोगमाभीक्ष्ण्यात् संवेगं चाप्यभावयत्॥
यथाशक्ति तपस्तेपे स्वयं वीर्यमहापयन्।
त्यागे च मतिमाधत्ते ज्ञानसंयमसाधने॥
सावधानः समाधाने साधूनां सोऽभवन् मुहुः।
समाधये हि सर्वोऽयं परिस्पन्दो हितार्थिनाम्॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनसंस्कृति की तरह ही बौद्धसंस्कृति ने भी बुद्धत्व की उपलब्धि के लिए दान, शील, नैष्कर्म्य, प्रज्ञा, वीर्य, शान्ति, सत्य अधिष्ठान [दृढ़ निश्चय], मैत्री ; उपेक्षा [सुख दुख में समस्थिति] दस पारमिताएँ [पाली रूप पारमी] अपनाना आवश्यक माना है।[१२८] दस पारमिताओं और बीसस्थानों में भी अत्यधिक समानता है। तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर स्पष्ट ज्ञात होता है कि श्रमण संस्कृति की दोनों ही धाराओं ने तीर्थङ्कर व बुद्ध, बनने के लिए पूर्वभवों में ही आत्म-मन्थन, चित्तग्रंथन, गुणों का उत्कीर्तन तथा गुणों का धारण करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य माना है।

वज्रनाभ मुनि ने भी विशुद्ध परिणाम से श्वेताम्बर ग्रंथानुसार

स वैयावृत्यमातेने, व्रतस्थेष्वामयादिषु ।
अनात्मतरको भूत्वा तपसो हृदयं हि तत् ॥
स तेने भक्तिमर्हत्सु पूजामर्हत्सु निश्चलाम् ।
आचार्यान् प्रश्रयी भेजे मुनीनपि बहुश्रुतान् ॥
परां प्रवचने भक्तिं आप्तोपज्ञे ततान सः ।
न पारयति रागादीन् विजेतुं सन्ततानसः ॥
अवश्यमवशोऽप्येष वशी स्वावश्यकं दधौ ।
षड्भेदं देशकालादिसव्यपेक्षमतूनयन् ॥
मार्गं प्रकाशयामास तपोज्ञानादिदीधितीः ।
दधानोऽसौ मुनीनेनो भव्याब्जानां प्रबोधकः ॥
वात्सल्यमधिकं चक्रे स मुनिर्धर्मवत्सलः ।
विनेयान् स्थापयन् धर्मे जिनप्रवचनाश्रितान् ॥

—महापुराण श्लोक० ६८ से ७७, पर्व ११ पृ० २३३–३४

(ख) दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णं ज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी सङ्घसाधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचन वत्सलत्वमिति तीर्थकृत्वस्य ।

—तत्वार्थ सूत्र अ० ६ सू० २३

१२८. बौद्धधर्म दर्शन पृ० १८१–१८२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीस स्थानकों की[१२९] और दिगम्बर ग्रन्थानुसार सोलह भावनाओं[१३०] की आराधना कर तीर्थङ्कर नाम गोत्र का अनुबन्धन किया। अन्त में मासिक संलेखनापूर्वक पादपोपगमसंथारा करसमाधिपूर्वक आयुष्य पूर्ण किया।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि वज्रनाभ के शेष चारों लघु भ्राताओं में से बाहुमुनि मुनियों की वैयावृत्य करता और सुबाहु मुनि परिश्रान्त मुनियों को विश्रामणा देता—[१३१] अर्थात् थके हुए मुनियों के अवयवों का मर्दन आदि करके सेवा करता। दोनों की सेवा भक्ति को निहार कर वज्रनाभ अत्यधिक प्रसन्न हुए

---

१२९. तत्थ पढमेण वइरणाभेण बीसाए कारणेहिं तित्थयरत्तं निबद्धं।

—आवश्यक चूर्णि० पृ० १३४

(ख) वइरणाभेण य विसुद्धपरिणामेण तित्थगरणामगोत्तं कम्मं बद्धं ति।

—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति पृ० ११८

१३०. इत्यमूनि महाधैर्यो मुनिश्चिरमभावयत्।
तीर्थंकृत्त्वस्य सम्प्राप्तौ कारणान्येष षोडश॥

—महापुराण ७८।११।२३४

(ख) जगदग्र्यैश्यपण्यानि त्रैलोक्यक्षोभणानि च।
कारणानि च जैनस्य भावयामास षोडश॥

—पुराणसार ७।२।३२

१३१. (क) तत्थ बाहू सो तेसिं सव्वेसिं वेयावच्चं करेति।
जो सो सुबाहु, सो भगवन्ताणं किंतिकम्मं करेति।

—आवश्यक चूर्णि पृ० १३३

(ख) तत्थ बाहु तेसिं वेयावच्चं करेति, जो सुबाहू सो साहुणो बीसामेति।

—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० २१८

(ग) तत्थ वाहू तेसिं अन्नेसिं च साहूणं वेयावच्चं करेइ, जो सुबाहू सो साहुणो विस्सामेइ।

—आवश्यक मल० वृत्ति०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और उनकी प्रशंसा करते हुए बोले—तुमने सेवा और विश्रामणा के द्वारा अपने जीवन को सफल किया है।[132]

ज्येष्ठ भ्राता के द्वारा अपने मझले भ्राताओं की प्रशंसा सुनकर पीठ, महापीठ मुनि के अन्तर्मानस में ये विचार जागृत हुए कि हम स्वाध्याय आदि में निरन्तर तन्मय रहते हैं, पर खेद है कि हमारी कोई प्रशंसा नहीं करता, जबकि वैयावृत्य करने वालों की प्रशंसा होती है।[133] इस ईर्ष्याबुद्धि की तीव्रता से मिथ्यात्व आया और उन्होंने

---

१३२. एवं ते करेंति वइरनाभो भगवं अणुवूहति—अहो सुलद्धं जम्मजीवियफलं जं साधूणं वेयावच्चं कीरइत्ति, परिसन्ता वा साधुणो वीसामिज्जन्ति, एवं पसंसति।

—आवश्यक चूर्णि पृ० १३३

(ख) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० ११८।

(ग) एवं ते करेंते भयवं वयरनाभो-अणुवूहइ अहो सुलद्धं जम्मं सहलीकयं जीवियं जं साहूण वेयावच्चं कीरइ, परिस्सन्ते वा साहुणो विस्सामेइ।

—आवश्यक मल० वृत्ति० प० १६०।१

(घ) अहो ! धन्याविमौ वैयावृत्यविश्रामणाकरौ।
इति बाहुसुबाहू तौ वज्रनाभस्तदाऽस्तवीत्॥

—त्रिषष्ठि० १।१।६०६

१३३. एवं पसंसिज्जन्तेसु तेसु तेसिं दोण्हमग्गिल्लाणं अपत्तियं भवति, अम्हे सज्झायन्ता ण पसंसिज्जामो, जो करेइ सो पसंसिज्जइ।

—आवश्यक चूर्णि पृ० १३३–१३४

(ख) एवं पसंसिज्जंतेसु तेसु तेसिं पच्छिमाणं दोण्हवि पीढमहापीढाणं अप्पत्तियं भवइ, अम्हे सज्झायन्ता न पसंसिज्जामो जो करेइ सो पसंसिज्जइ, सच्चो लोगववहारोत्ति।

आवश्यक मल० वृ० प० १६०।१

(ग) तौ तु पीठ-महापीठौ, पर्यचिन्तयतामिति।
उपकारकरो यो हि स एवेह प्रशस्यते॥
आगमाध्ययनध्यानरतावनुपकारिणौ।
को नौ प्रशंसत्वथवा, कार्यकृद्गृह्यको जनः॥

—त्रिषष्ठि १।१।६०७–६०८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्री वेद का बन्धन किया। आलोचन-प्रतिक्रमण न करने पर स्वल्प दोष भी अनर्थ का कारण बन जाता है।[१३४]

सेवा के कारण बाहुमुनि ने चक्रवर्ती के विराट् सुखों के योग्य कर्म उपार्जित किये[१३५] और सुबाहु मुनि ने विश्रामणा के द्वारा लोकोत्तर बाहुबल को प्राप्त करने योग्य कर्मबन्धन किया।[१३६]

प्रस्तुत प्रसंग महापुराण में नहीं है।

[१२] सर्वार्थसिद्ध

आयु पूर्ण कर वज्रनाभ आदि पाँचों भाई सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए, वहाँ वे तेतीस सागरोपम तक सुख के सागर में तैरते रहे।[१३७]

---

१३४. एवं ताभ्यां गुरुषु मात्सर्यमुद्वहद्भ्यां तथाविधतीव्रामर्षवशान्मिथ्यात्वमुपगम्य स्त्रीत्वमुपचितं, स्वल्पोऽपि दोषोऽनालोचिताप्रतिक्रान्तो महानर्थफलो भवति।

—आवश्यक मल० वृ० १६०।१

(ख) ताभ्यामनालोचयद्भ्यामितीर्ष्याकृतदुष्कृतम्।
मायामिथ्यात्वयुक्ताभ्यां, कर्म स्त्रीत्वफलं कृतम्॥

—त्रिषष्ठि १।१।६०६

१३५. बहुनाऽपि च साधूनां वैयावृत्यं वितन्वता।
चक्रवर्तिभोगफलं कर्मोपार्जितमात्मनः॥

—त्रिषष्ठि० १।१।६०४

१३६. विश्रामणां महर्षीणां कुर्वाणेन तपोजुषाम्।
सुबाहुना बाहुबलं लोकोत्तरमुपार्जितम्॥

—त्रिषष्ठि १।१।६०५

१३७. ततो पंचवि अहाउयं पालइत्ता कालं काऊण सव्वट्ठ सिद्धिमहाविमाणे तेत्तीस सागरोवमट्ठिइया देवा उववण्णा।

—आवश्यक निर्युक्ति मल० वृ० १६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१३] श्री ऋषभदेव

सर्वार्थसिद्ध की आयु समाप्त होने पर सर्वप्रथम वज्रनाभ का जीव च्युत हुआ और वह जम्बूद्वीपस्थ भरतक्षेत्र की इक्ष्वाकुभूमि में अन्तिम कुलकर "नाभि" की पत्नी मरुदेवी की कुक्षि में आषाढ़ कृष्णा चतुर्थी को उत्तराषाढ़ नक्षत्र के योग में उत्पन्न हुआ।[१३८] चैत्र कृष्णा अष्टमी

(ख) संलेखनाद्वयपुरः सरमेकधीरास्,
ते पादपोपगमनानशनं प्रपद्य।
सर्वार्थसिद्धिमधिगम्य दिवं-
त्रयस्त्रिंशाब्ध्यायुषः सुरवराः षडपिह्यभूवन्॥
—त्रिषष्ठि० १।१।६११

(ग) उपशान्तगुणस्थाने कृतप्राणविसर्जनः।
सर्वार्थसिद्धिमासाद्य सम्प्रापत् सोऽहमिन्द्रताम्॥
—महापुराण १११।११।२३७

(घ) चक्रवर्ती स्वकालं स्वपञ्चभावनकं तपः।
कृत्वान्ते श्रीप्रभं शैलमारुह्य प्राक्तनैः सह॥
आराधनां तत्र चतुष्प्रकारामाराध्य मासानशनो जगाम।
सर्वार्थसिद्धिं स निनाय तत्र कालं त्रयस्त्रिंशदथार्णवानाम्॥
—पुराणसार ७८।७६।२।३२

१३८. उववातो सव्वट्ठे सव्वेसिं पढमतो चुतो उसभो।
रिक्खेण असाढाहिं असाढबहुले चउत्थीए॥
—आवश्यक निर्युक्ति गा० १८२

(ख) उसभे णं अरहा कोसलिए जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे, सत्तमे पक्खे, आसाढबहुले, तस्स आसाढबहुलस्स चउत्थी-पक्खेणं सव्वट्ठसिद्धाओ महाविमाणाओ तेत्तीस सागरो-पट्ठितीयाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जम्बुद्दीवे भारहे वासे इक्खागभूमीए नाभिस्स कुलगरस्स मरुदेवीए भारियाए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि आहारवक्कंतीए जाव गब्भताए वक्कन्ते।
—कल्पसूत्र, सू० १९१। पृ० ५६

(ग) आषाढमासस्य पक्षे, प्रवृत्ते धवलेतरे।
चतुर्थ्यामुत्तराषाढानक्षत्रस्थे निशाकरे॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के योग में उनका जन्म हुआ।[१३९] "श्री ऋषभ" यह नाम रखा गया।

उसके पश्चात् बाहुमुनि का जीव सर्वार्थसिद्ध विमान से च्यवकर पूर्वभव के वैयावृत्य के दिव्य प्रभाव से श्री ऋषभदेव का पुत्र भरत चक्रवर्ती हुआ।[१४०] सुबाहुमुनि का जीव पूर्वभव में मुनियों को

प्रपाल्याऽऽयुस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमसम्मितम् ।
जीवः श्रीवज्रनाभस्य च्युत्वा सर्वार्थसिद्धितः ।।
श्री नाभिपत्न्या उदरे मरुदेव्या अवातरत् ।
मानसात् सरसो हंस, इव मन्दाकिनी तटे ।।
—त्रिषष्ठि १।२।२०६–२१०

१३९. चेत्तबहुलट्ठमीए जातो उसभो असाढनक्खते ।
जम्मणमहो य सव्वो नेयव्वो जाव घोसणयं ।।
—आवश्यक निर्युक्ति, १८४

(ख) ततो नवसु मासेषु दिनेष्वर्द्धाष्टमेषु च ।
गतेषु चैत्रबहुलाष्टम्यामर्द्धनिशाक्षणे ।।
उच्चस्थेषु ग्रहेष्विन्दावुत्तराषाढया युते ।
सुखेन सुषुवे देवी, पुत्रं युगलधर्मिणम् ।।
—त्रिषष्ठि १।२।२६४–२६५

१४०. बाहुजीवपीठजीवौ, च्युत्वा सर्वार्थ सिद्धतः ।
कुक्षौ सुमङ्गलादेव्या युग्मत्वेनाऽवतेरतुः ।।
—त्रिषष्ठि० १।२।८८४

(ख) बाहुणा वेयावच्चकरणेण चक्किभोगा णिव्वत्तिया ।
—आवश्यक मल० वृ० १६२

(ग) बाहुणा वेयावच्चकरणेण चक्किभोगा णिव्वत्तिया ।
—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, १२०

(घ) ततः सर्वार्थसिद्धिस्थो योऽसौ व्याघ्रचरः सुरः ।
सुबाहुरहमिन्द्रोऽतः च्युत्वा तद्गर्भमावसत् ।।
प्रमोदभरतः प्रेमनिर्भरा बन्धुता तदा ।
तमाह्वद्भरतं भावि समस्तभरताधिपम् ।।
—महापुराण १२८।१५८।१५।३३६–३३९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्रामणा देने से श्रीऋषभ के पुत्र बाहुबली हुए जो विशिष्ट बाहुबल के अधिपति थे।[१४१]

पीठ और महापीठ मुनि के जीवों का ईर्ष्या करने से क्रमशः श्री ऋषभदेव की पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी के रूप में जन्म हुआ।[१४२]

भगवान् श्री ऋषभदेव के विराट् व्यक्तित्व और कृतित्व की झाँकी अगले खण्ड में प्रस्तुत है। यहाँ तो श्रीऋषभदेव के पूर्वभवों का संक्षिप्त रेखा-चित्र उपस्थित किया गया है जो पतनोत्थान का जीवित भाष्य है। श्रमणसंस्कृति का यह उद्घोष रहा है कि जब आत्मा पर-परिणति से हटकर स्व-परिणति को अपनाता है तब शनैः शनैः शुद्ध बुद्ध निर्मल होता हुआ एक दिन परमात्मा बन जाता है। कर्म-पाश से सदा-सर्वदा के लिए मुक्त होने का नाम ही परमात्म-अवस्था है।[१४३]

इस प्रकार श्रमण संस्कृति ने निजत्व में ही जिनत्त्व की पावन-प्रतिष्ठा कर जन-जन के अन्तर्मानस में आशा और उल्लास का संचार किया। प्रसुप्त-देवत्त्व को जगाकर आत्मा से परमात्मा, भक्त से भगवान् और नर से नारायण बनने का पवित्र संदेश दिया।

---

१४१. त्रिषष्ठि० १।२।८८६–८८८।
(ख) सुबाहुणा बाहुबलं।
—आवश्यक मल० वृ० १६२
(ग) सुबाहुणा वीसामणाए बाहुबलं निव्वतिअं।
—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति० १२०।१

१४२. त्रिषष्ठि० १।२।८८४ से ८८६।
(ख) पच्छिमेहिं दोहिं ताए मायाए इत्थिनामगोत्तं कम्ममज्जितं ति।
—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति० १२०

१४३. कर्म-बद्धो भवेज्जीवः,
कर्ममुक्तस्तथा जिनः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषभदेव : एक परिशीलन

द्वितीय खण्ड

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिचयरेखा

- महापुरुषों का देश
- युग-पुरुष
- भारतीय संस्कृति के आद्य निर्माता
- जन्म से पूर्व
- शासनव्यवस्था
- कुलकरों की संख्या
- दण्डनीति
- हाकारनीति
- माकारनीति
- धिक्कारनीति
- स्वप्न-दर्शन
- जन्म
- नाम
- आदिपुरुष
- वंश उत्पत्ति
- विवाह परम्परा
- विधवाविवाह नहीं
- भरत और बाहुबली का विवाह
- सर्वप्रथम राजा
- राज्यव्यवस्था का सूत्रपात
- खाद्यसमस्या का समाधान
- कला का अध्ययन
- वर्ण-व्यवस्था
- साधना के पथ-पर
- दान
- महाभिनिष्क्रमण
- विवेक के अभाव में
- साधक जीवन
- विशिष्ट लाभ
- अक्षय तृतीया
- अरिहन्त के पद पर
- सम्राट् भरत का विवेक
- मां मरुदेवी की मुक्ति
- धर्म चक्रवर्ती
- उत्तराधिकारी
- आद्य परिव्राजक मरीचि
- सुन्दरी का संयम
- अठानवें भ्राताओं की दीक्षा
- भरत और बाहुबली
- सफलता नहीं मिली
- बाहुबली को केवल ज्ञान
- अनासक्त भरत
- भरत से भारतवर्ष
- भरत को केवल ज्ञान
- भगवान् के संघ में
- निर्वाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम अध्याय

गृहस्थ-जीवन

●

महापुरुषों का देश

भारतवर्ष महापुरुषों का देश है, इस विषय में संसार का कोई भी देश या राष्ट्र भारतवर्ष की तुलना नहीं कर सकता। यह अवतारों की जन्मभूमि है, सन्तों की पुण्यभूमि है, वीरों की कर्मभूमि है, और विचारकों की प्रचार-भूमि है। यहाँ अनेक नररत्न, समाज-रत्न एवं राष्ट्ररत्न पैदा हुए हैं, जिन्होंने मानव मन की सूखी धरणी पर स्नेह की सरस सरिता प्रवाहित की। जन-जीवन में अभिनव जागृति का संचार किया। जन-मन में संयम और तप की ज्योति जगाई। अपने पवित्र चरित्र के द्वारा और तपः पूत वाणी के द्वारा, कर्तव्य मार्ग में जूझने की अमर प्रेरणा दी।

युग-पुरुष

गगन-मण्डल में विचरती हुई विद्युत तरंगों को पकड़ कर जैसे बेतार का तार उन विद्युत्तरंगों को भाषित रूप देता है, अव्यक्त वाणी को व्यक्त करता है, वैसे ही समाज में या राष्ट्र में जो विचार-धाराएँ चलती हैं, उन्हें प्रत्येक विचारक अनुभव तो करता है किन्तु अनुभूति की तीव्रता के अभाव में अभिव्यक्त नहीं कर सकता। युग-पुरुष की अनुभूति तीव्र होती है और अभिव्यक्ति भी तीव्र होती है। वह जनता जनार्दन की अव्यक्त विचारधाराओं को बेतार के तार की भाँति मुखरित ही नहीं करता बल्कि उसे नूतन स्वरूप प्रदान करता है। उनकी विमल-वाणी में युग की समस्याओं का समाधान निहित होता है। उसके कर्म में युग का कर्म क्रियाशील होता है और उसके चिन्तन में युग का चिन्तन चमकता है। युग-पुरुष अपने युग का सफल प्रतिनिधित्व करता है। जन-जन के मन का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधिकार नेतृत्व करता है एवं वह युग की जनता को सही दिशा-दर्शन देता है। भूले-भटके जीवन राहियों का पथप्रदर्शन करता है। अतः वह समाज रूपी शरीर का मुख भी है और मस्तिष्क भी है।

भगवान् श्री ऋषभदेव ऐसे ही युगपुरुष थे, जिन्होंने अपने युग की भोली-भाली जनता को "सत्यं, शिवं सुन्दरम्" का पाठ पढ़ाया, जनजीवन को नया विचार, नयी वाणी एवं नया कर्म प्रदान किया।भोगमार्ग से हटाकर कर्ममार्ग, प्रवृत्तिमार्ग और योगमार्ग पर लगाया। अज्ञानान्धकार को हटाकर ज्ञान का विमल आलोक प्रज्ज्वलित किया। मानव-संस्कृति का नव-निर्माण किया। यही कारण है कि अनन्त-अतीत की धूलि भी उनके जीवन की चमक एवं दमक को आच्छादित नहीं कर सकी।

भारतीय संस्कृति के आद्यनिर्माता

आज मानवसंस्कृति के आद्यनिर्माता महामानव भगवान् श्री ऋषभदेव को कौन नहीं जानता? वे वर्तमान अवसर्पिणी काल-चक्र में सर्वप्रथम तीर्थङ्कर हुए हैं।[1] उन्होंने ही सर्वप्रथम पारिवारिक प्रथा, समाजव्यवस्था, शासनपद्धति, समाजनीति और राजनीति की स्थापना की और मानवजाति को एक नया प्रकाश दिया जिसका उल्लेख अगले पृष्ठों में किया जाएगा।

जन्म से पूर्व

भगवान् श्री ऋषभदेव ऐसे युग में इस अवनीतल पर आये जब

---

१. (क) एत्थणं उसहेणामं अरहा कोसलिए पढमराया, पढमजिणे, पढमकेवली, पढमतित्थयरे, पढम धम्मवर चक्कवट्टी समुप्पज्जित्था।
—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति

(ख) उसभे इ वा, पढमराया इ वा, पढमभिक्खाचरे इवा, पढमजिणे इवा, पढमतित्थकरे इ वा।
—कल्पसूत्र० पुण्यविजयजी सू० १९४ पृ० ५७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्यावर्त के मानवीय जीवन में आमूलचूल परिवर्तन हो रहा था। जीवन का ढंग पूरी तरह पलट रहा था। निष्क्रिय-यौगलिक-काल समाप्त होकर कर्मयुग का प्रारम्भ होने जा रहा था। प्रतिपल, प्रतिक्षण मानव की आवश्यकताएँ तो बढ़ रही थीं पर उस युग के जीवन निर्वाह के एक मात्र साधन कल्पवृक्षों की शक्ति क्षीण हो रही थी। साधनों की अल्पता से संघर्ष होने लगा, वाद-विवाद, लूट-खसोट और छीना-झपटी होने लगी। संग्रहबुद्धि पैदा होने लगी। स्नेह, सरलता, सौम्यता, निस्पृहता प्रभृति सद्गुणों में परिस्थिति की विवशता से परिवर्तन आने लगा। अपराधी मनोभावना के बीज अंकुरित होने लगे।

शासन व्यवस्था

विख्यात राजनैतिक विचारक टामस्पेन ने लिखा है, "मानव अपनी बुरी प्रवृत्तियों पर स्वयं नियंत्रण नहीं रख सका इसलिए शासन का जन्म हुआ। शासन का कार्य है व्यक्ति की बुरी प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण रखना। अच्छी प्रवृत्ति फूल की लता है, फल का वृक्ष है, जिसे बुरी प्रवृत्ति की झाड़ियाँ घेरती हैं, पनपने नहीं देतीं। शासन का काम इन झाड़ियों को काटना है।"[२]

प्रस्तुत सन्दर्भ के प्रकाश में हम जैन संस्कृति की दृष्टि से देखें तो भी शासन व्यवस्था का मूल अपराध और अव्यवस्था ही है। अपराध और अव्यवस्था पर नियंत्रण पाने के हेतु सामूहिक जीवन जीने के लिए मानव विवश हुआ। मानव की अन्तः प्रकृति ने उसे प्रेरणा प्रदान की। उस सामूहिक व्यवस्था को 'कुल' कहा गया। कुलों का मुखिया जो प्रकृष्ट प्रतिभा सम्पन्न होता था वह 'कुलकर' कहलाने लगा। वह उन कुलों की सुव्यवस्था करता।[3]

---

२. ज्ञानोदय, वर्ष १७ अङ्क २ अगस्त १९६५, सहचिन्तन, (कन्हैयालाल मिश्र) पृ० १४४।

३. स्थानांग सूत्रवृत्ति० सू० ७६७, पत्र ५१८–१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुलकरों की संख्या

कुलकरों की संख्या के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं। स्थानाङ्ग[४] समवायांग[५] भगवती, आवश्यकचूर्णि,[६] आवश्यकनिर्युक्ति[७] तथा त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र[८] में सात कुलकरों के नाम उपलब्ध होते हैं। पउमचरियं,[९] महापुराण[१०] और सिद्धान्त संग्रह[११] में चौदह के तथा

---

४. स्थानांग सूत्र वृत्ति सू० ७६७ पत्र ५१८–१।

५. समवायांग १५७।

(ख) जम्बुद्दीवे णं भंते ! दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए समाए कइ कुलगरा होत्था ? गोयमा ! सत्त।

—भगवती श० ५, उद्दे० ६, सू० ३

६. आवश्यक चूर्णि पत्र १२९।

७. पढमेत्थविमलवाहण, चक्खुम जसमं चउत्थमभिचन्दे।
तत्तो य पसेणइए, मरुदेवे चेव नाभी य॥

—आवश्यक नि० मल० वृ० गा० १५२ पृ० १५४

८. त्रिषष्ठि० पर्व० १, स० २, श्लो० १४२–२०६।

९. पउमचरियं उद्दे० ३, श्लो० ५०–५५

(१) सुमति, (२) प्रतिश्रुति, (३) सीमङ्कर, (४) सीमन्धर, (५) क्षेमंकर, (६) क्षेमंधर, (७) विमलवाहन, (८) चक्षुष्मान्, (९) यशस्वी, (१०) अभिचन्द्र, (११) चन्द्राभ, (१२) प्रसेनजित्, (१३) मरुदेव, (१४) नाभि।

१०. आद्यः प्रतिश्रुतिः प्रोक्तः, द्वितीयः सन्मतिर्मतः।
तृतीयः क्षेमकृन्नाम्ना, चतुर्थः क्षेमधृन्मनुः॥
सीमकृत्पंचमो ज्ञेयः, षष्ठः सीमधृदिष्यते।
ततो विमलवाहाङ्कश् चक्षुष्मानष्टमो मतः।
यशस्वान्नवमस्तस्मान् नाभिचन्द्रोऽप्यनन्तरः॥
चन्द्राभोऽस्मात्परं ज्ञेयो, मरुदेवस्ततः परम्।
प्रसेनजित्परं तस्मा, न्नाभिराजश्चतुर्दशः॥

—महापुराण जिनसेनाचार्य, प्रथम भाग, तृतीय पर्व श्लो० २२९–२३२, पृ० ६६,

११. सिद्धान्त संग्रह पृष्ठ १८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति[१२] में पन्द्रह के नाम मिलते हैं। सम्भवतः अपेक्षा भेद से इस प्रकार हुआ हो।

कुलकरों को आदिपुराण में 'मनु' भी कहा है।[१३] वैदिक साहित्य में कुलकरों के स्थान में 'मनु' शब्द ही व्यवहृत हुआ है। मनुस्मृति में स्थानांग की तरह सात मनुओं का उल्लेख है[१४] तो अन्यत्र चौदह का भी।[१५] संक्षेप में चौदह या पन्द्रह कुलकरों को सात में अन्तर्निहित किया जा सकता है। चौदह या पन्द्रह कुलकरों का जहाँ उल्लेख है, उसमें प्रथम छः सर्वथा नये हैं और ग्यारहवें कुलकर चन्द्राभ का भी उल्लेख नहीं है। शेष सात वे ही हैं।

---

१२. तीसे समाए पच्छिमेतिभाए पलिओवमद्ध-
भागावसेसे, एत्थणं, इमे पण्णरस कुलगरा
समुप्पज्जित्था तं जहा—सुमई, पडिस्सुई,
सीमंकरे, सीमंधरे, खेमंकरे, खेमंधरे,
विमलवाहणे, चक्खुमं, जसमं अभिचन्दे
चंदाभे, पसेणई, मरुदेवे, णाभी उसभोत्ति।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति पत्र० १३२

१३. आदि पुराण ३।१५।
(ख) महापुराण ३।२२६। पृ० ६६।

१४. स्वायम्भुवस्यास्य मनोः, षड्वंश्या मनवोऽपरे।
सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाः स्वाः, महात्मानो महौजसः॥
स्वारोचिषश्चोत्तमश्च, तामसो रैवतस्तथा।
चाक्षुषश्च महातेजा, विवस्वत्सुत एव च॥
स्वायम्भुवाद्याः सप्तैते, मनवो भूरितेजसः।
स्वे स्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्यापुश्चराचरम्॥

—मनुस्मृति, अ० १। श्लो० ६१–६२–६३

१५. (१) स्वायम्भुव, (२) स्वारोचिष, (३) ओत्तमि, (४) तापस, (५) रैवत, (६) चाक्षुष, (७) वैवस्वत, (८) सावर्णि, (९) दक्षसावर्णि, (१०) ब्रह्मसावर्णि, (११) धर्मसावर्णि, (१२) रुद्रसावर्णि, (१३) रौच्य देव सावर्णि, (१४) इन्द्र सावर्णि।

—मोन्योर-मोन्योर विलियम संस्कृत-इङ्गलिश डिक्शनरी पृ० ७८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दण्डनीति

अपराधी मनोवृत्ति जब व्यवस्था का अतिक्रमण करने लगी तब अपराधों के निरोध के लिये कुलकरों ने सर्वप्रथम दण्डनीति[१६] का प्रचलन किया। वह दण्डनीति हाकार, माकार और धिक्कार थी।[१७]

हाकार नीति

सात कुलकरों की दृष्टि से प्रथम कुलकर विमल वाहन के समय हाकार[१८] नीति का प्रचलन हुआ। उस युग का मानव आज के मानव की तरह अमर्यादित व उच्छृंखल नहीं था। वह स्वभाव से ही संकोची और लज्जाशील था। अपराध करने पर अपराधी को इतना ही कहा जाता—"हा ! अर्थात् तुमने यह क्या किया ?" यह शब्द-प्रताड़ना उस युग का महान् दण्ड था। अपराधी पानी-पानी हो जाता।[१९] प्रस्तुत नीति द्वितीय कुलकर "चक्षुष्मान्" के समय तक सफलता के साथ चली।

माकार नीति

जब "हाकार नीति" विफल होने लगी, तब "माकार नीति" का प्रयोग आरम्भ हुआ।[२०] तृतीय और चतुर्थ कुलकर "यशस्वी" और

---

१६. दण्डः अपराधिनामनुशासनं तत्र तस्य वा स एव वा नीतिः नयो दण्डनीतिः।

—स्थानांग वृत्ति, प० ३९९-१

१७. हक्कारे मक्कारे धिक्कारे चेव दण्डनीतीओ।
वोच्छं तासि विसेसं जहक्कमं आणुपुव्वीए ॥

—आव० नि० गा० १६४

१८. "ह इत्यधिक्षेपार्थस्तस्य करणं हकारः।

—स्थानाङ्ग सू० वृत्ति० प० ३९९

१९. तेणं मणुआ हक्कारेणं दंडेणं हया समाणा लज्जिआ, विलज्जिआ, वेट्टा भीआ तुसिणीआ विणओणया चिट्ठन्ति।

—जम्बू० कालाधिकार पृ० ७६

२०. मा इत्यस्य निषेधार्थस्य करणं अभिधानं माकारः।

—स्थानाङ्ग वृत्ति प० ३९९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"अभिचन्द्र" के समय तक लघु अपराध के लिए "हाकार नीति" और गुरुतर अपराध के लिए "माकार नीति" प्रचलित रही। "मत करो" यह निषेधाज्ञा महान् दण्ड समझी जाने लगी।

धिक्कारनीति

मगर जन साधारण की धृष्ठता क्रमशः बढ़ती जा रही थी, अतः माकारनीति के भी असफल हो जाने पर "धिक्कारनीति" का प्रादुर्भाव हुआ।[२१] और यह नीति पाँचवें प्रसेनजित्, छठे मरुदेव तथा सातवें कुलकर नाभि तक चलती रही। इस प्रकार खेद, निषेध और तिरस्कार मृत्युदण्ड से भी अधिक प्रभावशाली थे। क्योंकि उस समय का मानव स्वभाव से सरल और मानस से कोमल था।[२२] उस समय तक अपराधवृत्ति का विशेष विकास नहीं हुआ था।

स्वप्न-दर्शन

अन्तिम कुलकर नाभि के समय यौगलिक सभ्यता क्षीण होने लगी, और एक नयी सभ्यता मुस्कुराने लगी। उस सन्धिवेला में श्री ऋषभदेव सर्वार्थविमान से च्यवकर माता मरुदेवी की कुक्षि में आये। उनके पिता नाभि थे।[२३]

---

२१. धिगधिक्षेपार्थ एव तस्य करणं उच्चारणं धिक्कारः।

—स्थानांग वृत्ति प० ३९९

२२. तेणं मणुआ पगईउवसन्ता, पगई पयणुकोह-माण—माया—लोहा, मिउ—मद्दवसम्पण्णा, अल्लीणा, भद्दगा, विणीआ, अप्पिच्छा, असणिहिसंचया, विडिमन्तरपरिवसणा जहिच्छिअ कामकामिणो।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्षस्कार सू० १४

२३. नाभिस्स कुलगरस्स मरुदेवीए भारियाए।

—कल्पसूत्र पुण्य० सू० १९१ पृ० ५६

(ख) त्रिषष्ठि पर्व १, सर्ग २, श्लो० ६४७ से ६५३।

(ग) नाभिस्त्वजनयत्पुत्रं, मरुदेव्यां महाद्युतिः।
ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं, सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम्॥

—वायुमहापुराण पूर्वार्ध ५ अ० ३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जब बालक गर्भ में आता है तब गर्भ का माता के मानस पर, और माता के मानस का गर्भ पर प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि किसी विशिष्ठ पुरुष के गर्भ में आने पर उसकी माता कोई श्रेष्ठ स्वप्न देखती है। भारतीय साहित्य में स्वप्न-विज्ञान के सम्बन्ध में विस्तार से निरूपण मिलता है। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के गर्भ में आने पर माता कौशल्या ने चार स्वप्न देखे थे।[२४] कर्मयोगी श्रीकृष्ण के गर्भ में आने पर देवकी ने सात स्वप्न देखे थे।[२५] महात्मा बुद्ध के

(घ) नाभिस्त्वजनयत् पुत्रं, मरुदेव्या महाद्युतिम् ॥५६॥
ऋषभं पार्थिवं श्रेष्ठं, सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ।
ऋषभाद् भरतो जज्ञे, वीरः पुत्रशताग्रजः ॥
— ब्रह्माण्ड पुराण, पूर्वार्द्ध, अनुषङ्गपाद श्लो० ५६–६० अध्याय १४

(ङ) नाभिर्मरुदेव्यां पुत्रमजनयत् ऋषभनामानं ।
—वाराह पुराण अध्याय ७४

(च) नाभेः पुत्रश्च ऋषभः ।
—स्कन्ध पुराण, माहेश्वरखण्ड-कौमारखण्ड
श्लो० ५७ अध्याय ३७

(छ) हिमाह्वयं तु यद्वर्ष, नाभेरासीन्महात्मनः ।
तस्यर्षभोऽभवत्पुत्रो, मेरुदेव्या महाद्युतिः ॥
—कूर्मपुराण श्लो० ३७ अध्याय ४१

२४. (क) चतुरो बलदेवाम्बाथ..... ।
—श्री काललोकप्रकाश, सर्ग ३०, श्लोक ५६ पृ० १६६

(ख) ददर्श सुखसुप्ता च यामिन्याः पश्चिमे क्षणे ।
चतुरः सा महास्वप्नान् सूचनान् बलजन्मनः ॥
—त्रिषष्ठि० पर्व ४ । सर्ग १, श्लो० १६८

(ग) सेनप्रश्न पृ० ३७६ ।

(घ) जैन रामायण, केशराज जी १६ वीं ढाल के दोहे ।

२५. यामिन्याः पश्चिमे यामे सूचका विष्णुजन्मनः ।
देव्या ददृशिरे स्वप्नाः सप्तैते सुखसुप्तया ॥
—त्रिषष्ठि० ४।१।२१७

(ख) सेनप्रश्न पृ० ३७६ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गर्भ में आने पर उनकी माता मायादेवा ने एक षड्दन्त गज का स्वप्न देखा था।[२६] उसी प्रकार श्री ऋषभदेव के गर्भ में आने पर माता मरुदेवी ने भी (१) गज, (२) वृषभ, (३) सिंह, (४) लक्ष्मी, (५) पुष्प-माला, (६) चन्द्र, (७) सूर्य (८) ध्वजा, (९) कुम्भ, (१०) पद्मसरोवर, (११) क्षीर-समुद्र, (१२) विमान, (१३) रत्नराशि, (१४) निर्धूम अग्नि ये चौदह महास्वप्न देखे।[२७] दिगम्बराचार्य जिनसेन ने सोलह स्वप्न देखने का उल्लेख किया है।[२८] उपर्युक्त चौदह स्वप्नों में से ध्वजा को

---

२६. (क) बुद्धचर्या, राहुल सांकृत्यायन पृ० २, प्रथम संस्क० ।
(ख) ललित विस्तर, गर्भावक्रान्ति परिवर्तन ।

२७. गय वसह सीह अभिसेय, दाम ससि दिणयरं झयं कुम्भं ।
पउमसर सागर विमाण-भवण रयणुच्चय सिहिं च ॥१॥
—कल्पसूत्र प० १४ (पुण्यविजय)

२८. सापश्यत् षोडशस्वप्नान्, इमान् शुभफलोदयान् ।
निशायाः पश्चिमे यामे, जिनजन्मानुशंसिनः ॥१०३॥
गजेन्द्रमैन्द्रमामन्द्रवृंहितं त्रिमदस्रुतम् ।
ध्वनन्तमिवसासारं, सा ददर्श शरद्घनम् ॥१०४॥
गवेन्द्रं दुन्दुभिस्कन्धं, कुमुदापाण्डुरद्युतिम् ।
पीयूषराशिनीकाशं, सापश्यत् मन्द्रनिःस्वनम् ॥१०५॥
मृगेन्द्रमिन्दुसच्छायवपुषं रक्तकन्धरम् ।
ज्योत्स्नया सन्ध्यया चैव, घटिताङ्गमिवैक्षत ॥१०६॥
पद्मां पद्ममयोत्तुङ्गविष्टरे सुरवारणैः ।
स्नप्यां हिरण्मयैः कुम्भैः अदर्शत् स्वामिव श्रियम् ॥१०७॥
दामनी कुसुमामोद, समालग्नमदालिनी ।
तज्झङ्कृतैरिवारब्धगाने सानन्दमैक्षत ॥१०८॥
समग्रबिम्बयुज्ज्योत्स्नं, ताराधीशं सतारकम् ।
स्मेरं स्वमिव वक्त्राब्जं, समौक्तिकमलोकयत् ॥१०९॥
विधूतध्वान्तमुद्यन्तं, भास्वन्तमुदयाचलात् ।
शातकुम्भमयं कुम्भ मिवाद्राक्षीत् स्वमङ्गले ॥११०॥
कुम्भौ हिरण्मयौ पद्मपिहितास्यौ व्यलोकत ।
स्तनकुम्भाविवात्मीयौ, समासक्तकराम्बुजौ ॥१११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन्होंने स्थान नहीं दिया है। शेष तेरह स्वप्न वे ही हैं। उनके अतिरिक्त, (१) मत्स्ययुगल (२) सिंहासन, (३) नागेन्द्र का भवन—ये तीन स्वप्न अधिक हैं। श्वेताम्बरमान्यतानुसार नरक से आने वाले तीर्थङ्करों की माता स्वप्न में भवन देखती हैं और स्वर्ग से आने वालों की माता विमान।[२९] उन्होंने विमान और भवन के स्वप्न को वैकल्पिक माना है।

ऋषौ सरसि सम्फुल्लकुमुदोत्पलषङ्कजे ।
सापश्यन्नयनायामं, दर्शयन्ताविवात्मनः ॥११२॥
तरत्सरोजकिञ्जल्कपिञ्जरोदकमैक्षत ।
सुवर्णद्रवसम्पूर्णमिव दिव्यं सरोवरम् ॥११३॥
क्षुभ्यन्तमब्धिमुद्वेलं चलत्कल्लोलकाहलम् ।
सादर्शच्छीकरैर्मोक्तुम्, अट्टहासमिवोद्यतम् ॥११४॥
सैंहमासनमुत्तुङ्गं, स्फुरन्मणिहिरण्मयम् ।
सापश्यन्मेरुशृङ्गस्य, वैदग्धीं दधदूर्जिताम् ॥११५॥
नाकालयं व्यलोकिष्ट, परार्ध्यमणिभासुरम् ।
स्वसूनोः प्रसवागार,मिव देवैरुपाहृतम् ॥११६॥
फणीन्द्रभवनं भूमिम्, उद्भिद्योद्गतमैक्षत ।
प्राग्दृष्टस्वर्विमानेन, स्पर्द्धां कर्त्तुमिवोद्यतम् ॥११७॥
रत्नानां राशिमुत्सर्पदंशुपल्लविताम्बरम् ।
सा निदध्यौ धरादेव्या, निधानमिव दर्शितम् ॥११८॥
ज्वलद्धासुरनिर्धूमवपुषं विषमार्चिषम् ।
प्रतापमिव पुत्रस्य, मूर्त्तिरूपं न्यचायत ॥११९॥
न्यशामयच्च तुङ्गाङ्गं पुङ्गवं रुक्मसच्छविम् ।
प्रविशन्तं स्ववक्त्राब्जं स्वप्नान्ते पीनकन्धरम् ॥१२०॥

—महापुराण जिनसेनाचार्य, प० १२, श्लो० १०३ से १२०
पृ० २५९–२६०

२९. देवलोकाद्योऽवतरति तन्माता विमानं पश्यति, यस्तु नरकात् तन्माता भवनमिति ।

—भगवती शतक ११, उद्दे० ११, अभयदेववृत्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्म

भगवान् श्री ऋषभदेव का जन्म जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, कल्पसूत्र, आवश्यकनिर्युक्ति, आवश्यकचूर्णि, त्रिषष्टिशालाकापुरुषचरित्र, प्रभृति श्वेताम्बरग्रन्थानुसार चैत्र कृष्णा अष्टमी को हुआ[30] और दिगम्बराचार्य जिनसेन के अनुसार नवमी[31] को। संभव है अष्टमी की मध्यरात्रि होने से श्वेताम्बर परम्परा ने अष्टमी लिखा हो और प्रातःकाल जन्म मानने से दिगम्बर परम्परा ने नवमी लिखा हो। इस

---

३०. उसभे अरहा कोसलिए जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्सणं चित्तबहुलस्स अट्ठमीपक्खेणं नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइन्दियाणं जाव आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आरोग्गा आरोग्गं पयाया।

—कल्पसूत्र, पुण्य० सू० १९३ पृ०

(ख) चेत्तबहुलट्ठमीए जातो उसभो असाढनक्खत्ते।

—आवश्यक निर्युक्ति गा० १८४

(ग) .....चेतबहुलट्ठमीए उत्तरासाढाणक्खतेणं जाव अरोगा अरोगं पयाता।

—आवश्यक चूर्णि, जिनदासमहत्तर पृ० १३५

(घ) त्रिषष्ठि० सर्ग २, पर्व १ श्लो० पृ० २६४।

(ङ) कल्पलता—समय सुन्दर पृ० १९७।

(च) कल्पद्रुम कलिका—लक्ष्मीवल्लभ पृ० १४२।

(छ) कल्पसूत्र कल्पार्थबोधिनी, केशरगणी पृ० १४४।

(ज) कल्पसूत्र, कल्पसुबोधिका, पृ० ४८५।

३१. अथातो नवमासानाम्, अत्यये सुषुवे विभुम्।
देवी देवीभिरुक्ताभिः, यथास्वं परिवारिता॥
प्राचीव बन्धुमब्जानां, सा लेभे भास्वरं सुतम्।
चैत्रे मास्यसिते पक्षे, नवम्यामुदये रवेः॥
विश्वे ब्रह्ममहायोगे, जगतामेकवल्लभम्।
भासमानं त्रिभिर्बोधैः शिशुमप्यशिशुं गुणैः॥

—महापुराण जिनसेन स० १३, श्लो० १–३ पृ० २८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भेद का प्रमुख कारण हमारी दृष्टि से उदय और अस्त तिथि की पृथक्-पृथक् मान्यता हो सकती है।

नाम

मां मरुदेवी ने जो चौदह महास्वप्न देखे थे। उनमें सर्व प्रथम वृषभ का स्वप्न था[32] और जन्म के पश्चात् भी शिशु के उरु-स्थल पर वृषभ का लांछन था अतः उनका नाम "ऋषभ" रखा गया।[33] भागवत्

---

३२. (क) सा उसहगयसीहमाईए चोद्दस सुमिणे पासित्ता पडिबुद्धा।
—आवश्यक नि० मल० वृत्ति० प० १६३।१

(ख) णवरं पढमं उसभं मुहे अतितं पासति सेसाउ गयं।
—कल्पसूत्र पुण्य० सू० १९२ पृ० ५६

(ग) स्वर्गावतरणे दृष्टः, स्वप्नेऽस्य वृषभो यतः।
जनन्यां तदयं देवैः, आहूतो वृषभाख्यया॥
—महापुराण, जिनसेन, चतुर्दश पर्व श्लो० १६२

(घ) त्रिषष्टि १।२।२१३। प० ४०।१, पृ० ३१९

३३. (क) तत्र भगवतो नाम निबन्धनं चतुर्विंशतिस्तवे वक्ष्यति उरुसुउसभलंछणमुसभं सुमिणंमि तेण उसभजिणो।
—आवश्यक मल० वृ० पृ० १९२।१

(ख) ऊरुसु उसभलंछणं उसभो सुमिणंमि तेण कारणेण उसभोत्ति णामं कयं। —आवश्यक चूर्णि जिनदास पृ० १५१

(ग) ऊरुप्रदेशे ऋषभो, लाञ्छनं यज्जगत्पतेः।
ऋषभः प्रथमं यच्च, स्वप्ने मात्रा निरीक्षितः॥
तत्तस्य ऋषभ इति, नामोत्सवपुरः सरम्।
तौ मातापितरौ हृष्टौ, विदधाते शुभे दिने॥
—त्रिषष्ठि० १।२।६४८–६४९। प० ५४

(घ) पूर्व स्वप्नसमये वृषभस्य दर्शनात्, पुत्रस्योभयोर्जङ्घयोः रोम्णाम् आवर्तभ्रमणावलोकाद् वृषभस्याकारस्यलञ्छनाद् नाभिकुलकरेण "ऋषभः" इतिनाम दत्तम्।
—कल्पसूत्र, व्या० ७ पृ० १४२ कल्पद्रुमकलिका

(ङ) कल्पसूत्र कल्पार्थबोधिनी पृ० १४४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के मंतव्यानुसार उनके सुन्दर शरीर, विपुल कीर्ति, तेज, बल, ऐश्वर्य, यश और पराक्रम प्रभृति सद्गुणों के कारण महाराजा नाभि ने उनका नाम ऋषभ दिया।[३४]

भगवती,[३५] जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति,[३६] समवायाङ्ग,[३७] चतुर्विंशतिस्तव, कल्पसूत्र,[३९] नन्दीसूत्र,[४०] निशीथचूर्णि[४१] आदि आगमसाहित्य

---

३४. तस्य ह वा इत्थं वर्ष्मणा वारीयसा वृहच्छ्लोकेन चौजसा बलेन, श्रिया, यशसा, वीर्यशौर्याभ्यां च पिता ऋषभ इतीदं नाम चकार ।।
—श्रीमद्भागवत ५।४।२। प्र० खं० गोरखपुर संस्क० ३, पृ० ५५६

३५. उसभस्स अरहओ कोसलियस्स ।
—भगवती शत० २०, उद्दे० ८

३६. उसभेणं अरहा कोसलिए ।
—जम्बू० सू० ४६, पृ० ८६ अमोलक०

३७. उसभस्स पढमभिक्खा ।
—समवायांग

(ख) उसभेण लोयणाहेण ।
—समवायांग

३८. उसभमजियं च वन्दे ।
—चतुर्विंशतिस्तव सूत्र

३९. उसभेणं अरहा कोसलिए ।
—कल्पसूत्र सू० १९१ पृ० ५५

४०. उसभं अजियं संभवमभिनन्दण-सुमइ-सुप्पभ-सुपासं ।
—नन्दीसूत्र गाथा १८

४१. पुरिमा उसभसामिणो सिस्सा ।
—निशीथ चूर्णि, तृतीय भाग पृ० १५३

(ख) पुरिमो रिसभो, पच्छिमो वद्धमाणो ।
—निशीथ चूर्णि द्वि० भाग, पृ० १३६ सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में यही नाम आया है। उनके नाम के साथ "नाथ" और "देव" शब्द कब जुड़े, यह कहना कठिन है, तथापि यह स्पष्ट है कि ये शब्द उनके प्रति भक्ति और श्रद्धा के सूचक हैं।

दिगम्बरपरम्परा में ऋषभदेव के स्थान पर "वृषभदेव" भी प्रसिद्ध है। वृषभदेव जगत् भर में ज्येष्ठ हैं और जगत् का हित करने वाले धर्मरूपी अमृत की वर्षा करेंगे, एतदर्थ ही इन्द्र ने उनका नाम वृषभदेव रखा।[४२] वृष कहते हैं श्रेष्ठ को। भगवान् श्रेष्ठ धर्म से शोभायमान हैं, इसलिए भी इन्द्र ने उन्हें 'वृषभ स्वामी' के नाम से पुकारा।[४३]

श्री ऋषभदेव धर्म और कर्म के आद्यनिर्माता थे, एतदर्थ जैन इतिहासकारों ने उनका एक नाम "आदिनाथ" भी लिखा है और यह नाम अधिक जन-मन प्रिय भी रहा है।

श्री ऋषभदेव प्रजा के पालक थे, एतदर्थ आचार्य जिनसेन[४४] व आचार्य समन्तभद्र[४५] ने उनका एक गुण-निष्पन्न नाम

---

४२. वृषभोऽयं जगज्ज्येष्ठो, वर्षिष्यति जगद्धितम्।
धर्मामृतमितीन्द्रास्तम्, अकार्षुर्वृषभाह्वयम्॥
—महापुराण, जिनसेन पर्व १४, श्लो० १६०, पृ० ३१६

४३. वृषो हि भगवान्धर्मः, तेन यद्भाति तीर्थकृत्।
ततोऽयं वृषभस्वामीत्याह्वास्तैर्न पुरन्दरः॥
—महापुराण, जिनसेन पर्व १४, श्लो० १६१, पृ० ३१६

४४. आषाढमासबहुलप्रतिपद्दिवसे कृती।
कृत्वा कृतयुगारम्भं प्राजापत्यमुपेयिवान्॥
—महापुराण १६०।१६।३६३

४५. प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषुः,
शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्धतत्त्वः पुनरद्भुतोदयो,
ममत्वतो निर्विविदे विदाम्बरः॥
—बृहत्स्वयम्भू स्तोत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'प्रजापति' भी लिखा है। इनके अतिरिक्त उनके काश्यप,[४६] विधाता, विश्वकर्मा और स्रष्टा[४७] आदि अनेक नाम भी प्रसिद्ध हैं।

आदिपुरुष

भगवान् श्री ऋषभदेव जैनसंस्कृति की दृष्टि से प्रथम तीर्थङ्कर हैं। श्रीमद्भागवत की दृष्टि से वे विष्णु के अवतार हैं। भगवान श्री विष्णु महाराजा नाभि का प्रिय करने के लिये उनके अन्तःपुर की महारानी मरुदेवी के गर्भ में आये। उन्होंने इस पवित्र शरीर का अवतार वातरशना श्रमण ऋषियों के धर्मों को प्रकट करने की इच्छा से ग्रहण किया।[४८]

शिव महापुराण के अनुसार भगवान् श्री ऋषभदेव शिव के अट्ठाईस योगावतारों में आठवें योगावतार हैं।[४९] उन्होंने ऋषभदेव के

---

४६. कासं—उच्छू, तस्य विकारो—कास्यः—रसः, सो जस्स पाणं सो कासवो—उसभस्वामी।
—दशवैकालिक – अगस्त्यसिंह चूर्णि

(ख) काश्यमित्युच्यते तेजः काश्यपस्तस्य पालनात्।
— महापुराण प० १६, श्लो० २६६ पृ० ३७०

४७. विधाता विश्वकर्मा च, स्रष्टा चेत्यादिनामभिः।
प्रजास्तं व्याहरन्ति स्म, जगतां पतिमच्युतम्॥
—महापुराण, आचार्य जिनसेन १६।२६७।३७०

४८. प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया,
तदवरोधायने मरुदेव्यां धर्मान् दर्शयितुकामो,
वातरशनानां श्रमणानां ऋषीणाम्
ऊर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तनूवाततारः॥
—श्री मद्भागवत पञ्चम स्कन्ध

४९. शिव पुराण, वायुसंहिता, उत्तरखण्ड अ० ९, श्लो० ३, पृ० १३७६ वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप में अवतार ग्रहण किया।[५०] प्रभास पुराण में भी ऐसा ही उल्लेख है।[५१]

डाक्टर राजकुमार जैन ने "वृषभदेव तथा शिव सम्बन्धी प्राच्य मान्यताएं"[५२] शीर्षक लेख में वेद, उपनिषद्, भागवत प्रभृति ग्रन्थों के शताधिक प्रमाण देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ऋषभदेव और शिव एक ही हैं; पृथक्-पृथक् नहीं। श्रमण और ब्राह्मण दोनों परम्पराओं के वे आदि पुरुष हैं।

वंश-उत्पत्ति

जब ऋषभदेव एक वर्ष से कुछ कम के थे उस समय वे पिता की गोद में बैठे हुए क्रीड़ा कर रहे थे। शक्रेन्द्र हाथ में इक्षु लेकर आया।[५३] ऋषभदेव ने उसे लेने के लिए हाथ आगे बढ़ाया। बालक का इक्षु के प्रति आकर्षण देखकर शक्र ने इस वंश को 'इक्ष्वाकु वंश' नाम से

---

५०. इत्थंप्रभाव ऋषभोऽवतारः शंकरस्य मे।
सतां गतिर्दीनबन्धुर्नवमः कथितस्तव॥
ऋषभस्य चरित्रं हि परमं पावनं महत्।
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं श्रोतव्यं च प्रयत्नतः॥
—शिवपुराण ४।४७-४८

५१. कैलाशे विमले रम्ये, वृषभोऽयं जिनेश्वरः।
चकार स्वावतारं च, सर्वज्ञः सर्वगः शिवः॥
—प्रभासपुराण ४६

५२. मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, पृ० ६०६।

५३. (क) देसूणगं च वरिसं सक्कागमणं च वंसठवणा य।
—आवश्यक नि० गा० १८५ मल० वृ० पृ० १६२

(ख) इतो य णाभिकुलकरो उसभसामिणो अंकवरगतेणं एवं च विहरति, सक्को य महप्पमाणाओ इक्खुलट्ठीओ गहाय उवगतो जयावेई।
—आवश्यक चूर्णि पृ० १५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिहित किया। आचार्यों ने व्युत्पत्ति करते हुए कहा है—इक्षु+आकु (भक्षणार्थे) इक्ष्वाकु।[५४]

विवाह परम्परा

सामाजिक रीतिरिवाज, जिसमें विवाहप्रथा भी सम्मिलित है, कोई शाश्वत सिद्धान्त नहीं, किन्तु उन में युग के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। भाई-बहिन का विवाह इस युग में बड़े से बड़ा पाप माना जाता है, किन्तु उस युग में यह एक सामान्य प्रथा थी। यौगलिक परम्परा में भाई और भगिनी ही पति और पत्नी के रूप में परिवर्तित हो जाया करते थे। सुनन्दा के भ्राता की अकाल में मृत्यु हो जाने से[५५]

---

५४. (क) सक्को वंसट्ठवणे इक्खु अगू तेण हुन्ति इक्खागा।
—आवश्यक निर्युक्ति गा० १८६।

(ख) भगवता लट्ठीसु दिट्ठी पाडिता, ताहे सक्केण भणियं—किं भगवं ! इक्खुअकु। अकु भक्खणे, ताहे सामिणा पसत्थो लक्खणधरो अलंकितविभूसितो दाहिणहत्थो पसारितो, अतीव तम्मि हरिसो जातो भगवन्तस्स, तएणं सक्कस्स देविंदस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिते—जम्हा णं तित्थगरो इक्खुं अभिलसति तम्हा इक्खागुवंसो भवतु, एवं सक्को वंसं ठवेऊण गतो, अन्नेऽवि तं कालं खत्तिया इक्खुं भुञ्जन्ति तेण इक्खागवंसा जाता इति उवरिं आहारद्दारे निरुत्तंमि "आसी य इक्खुभोती इक्खागा तेण खतिया होति" भन्निही।
—आवश्यक चूर्णि, पृ० १५२

(ग) त्रिषष्ठि शलाका० १।२।६५४ से ६५६।

(घ) कल्पसूत्र सुबोधिका टीका पृ० ४८७।

(ङ) कल्पसूत्र, कल्पलता, समयसुन्दर जी, पृ० १६८।

(च) ,, कल्पार्थबोधिनीवृत्ति० केसर० पृ० १४४।

(छ) ,, कल्पद्रुमकलिका पृ० १४३।

(ज) ,, मणिसागर पृ० २६६

५५. पढमो अकालमच्चू तहिं, तालफलेण दारको उ हतो।
कन्ना य कुलगरेहिं य, सिट्ठे गहिया उसभपत्ती॥
—आव० नि० गा० १६०, म० वृ० १६३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषभदेव ने सुनन्दा व सहजात सुमङ्गला के साथ पाणिग्रहण कर नई व्यवस्था का सूत्रपात किया।[५६] सुमङ्गला ने भरत और ब्राह्मी को और सुनन्दा ने बाहुबली और सुन्दरी को जन्म दिया।[५७] इसके पश्चात् सुमंगला के क्रमशः अट्ठानवें पुत्र और हुए।[५८] दिगम्बर परम्परा निन्यानवें पुत्र मानती है।[५९]

---

५६. (क) भोगसमत्थं नाउं, वरकम्मं तस्स कासि देविन्दो।
दोण्हं वरमहिलाणं, वहुकम्मं कासि देवीतो॥
—आव० नि० गा० १९१ प० १९३

(ख) त्रिषष्ठि १।२।८८१।

५७. देवी सुमङ्गलाए, भरहो वम्भी य मिहुणगं जायं।
देवीए सुनन्दाए, वाहुबली सुन्दरी चेव॥
—आवश्यक मूलभाष्य

(ख) छप्पुव्वसयसहस्सा, पुव्वि जायस्स जिणवरिंदस्स।
तो भरहबंभिसुन्दरि, बाहुबली चेव जायाइं॥
—आव० नि० गा० १९२ म० वृ० १९४।१

(ग) आवश्यक चूर्णि पृ० १५३।

(घ) सुनन्दा सुन्दरीं पुत्रीं, पुत्रं बाहुबलीशिनम्।
लब्ध्वा रुचिं परां भेजे, प्राचीवार्कं सह त्विषा॥
—महा० १६।८।३४६

(ङ) तदा बाहुजीवो भरतः, पीठजीवो ब्राह्मी इति सुमङ्गलायाः मिथुनकं जातं। एवं सुबाहुजीवो बाहुबली, महापीठजीवः सुन्दरी इति मिथुनकं सुनन्दायाः जातं।
—कल्पलता–समय सुन्दर

(च) कल्प० कल्पार्थबोधिनी पृ० १४४–१४५।

(छ) ,, कल्पद्रुम कलिका, लक्ष्मी० पृ० १४३।

अउणापन्नं जुयले
पुत्ताण सुमङ्गला जणो सयं।
—आव० नि० गा० १९३ मल० वृ० १९४।१

(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० १५३।

(ब) एवं पुनरपि सुमङ्गलाया एकोनपञ्चाशत् युगलानि पुत्ररूपाणि जातानि। —कल्पलता–समयसुन्दर

५९. इत्येकान्नशतं पुत्रा, बभूवुर्वृषभेशिनः।
भरतस्यानुजन्मानश्चरमाङ्गा महौजसः॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विधवा विवाह नहीं

कितने ही आधुनिक विचारक कल्पना के गगन में विहरण करते हुए 'सुनन्दा' को विधवा मानकर श्री ऋषभदेव के उसके साथ किए गए विवाह को विधवा विवाह कहते हैं। उन विचारकों को यह स्मरण रखना चाहिए कि आचार्य भद्रबाहु,[६०] आचार्य जिनदासगणि महत्तर,[६१] आचार्य मलयगिरि,[६२] आचार्य हेमचन्द्र,[६३] श्री समय

ततो ब्राह्मीं यशस्वत्यां, ब्रह्मा समुदपादयत्।
कलामिवापराशायां, ज्योत्स्नपक्षोऽमलां विधोः॥

—महापुराण जिन० १६।४–५ पृ० ३४६

६०. आवश्यक निर्युक्ति, आचार्य भद्रबाहु गा० १६०।

६१. ·····'ततो य तलरुक्खाओ तलफलं पक्कं समाणं वातेण आहतं तस्स दारगस्स उवरि पडितं तेण सो अकाले चेव जीवितातो ववरोवितो।

—आवश्यक चूर्णि, जिनदास महत्तर पृ० १५२

६२. भगवतो देशोनवर्षकाल एव किञ्चिन्मिथुनकं सञ्जातापत्यं सत् तदपत्यमिथुनकं तालवृक्षस्याधो विमुच्य रिरंसया कदलीगृहादि क्रीड़ा गृहमगमत्, तस्माच्च तालवृक्षात् पवनप्रेरितं पक्वं तालफलमपतत्, तेन दारकोऽकाल एव जीविताद् व्यपरोपितः।

—आवश्यक मल० वृत्ति० पृ० १६३

६३. अन्येद्युः क्रीडया क्रीडद् बालभावानुरूपया।
मिथो मिथुनकं किञ्चित्, तले तालतरोरगात्॥
तदैव दैवदुर्योगात्, तन्मध्यान्नरमूर्द्धनि।
तडिद्दण्ड इवैरण्डेऽपतत् तालफलं महत्॥
प्रहतः काकतालीयन्यायेन स तु मूर्द्धनि।
विपन्नो दारकस्तत्र, प्रथमेनाऽपमृत्युना॥

—त्रिषष्ठि १।२।७३५ से ७३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुन्दर,[६४] उपाध्याय विनय विजय,[६५] केशरमुनि,[६६] श्री लक्ष्मीवल्लभ,[६७] श्री मणिसागर[६८] प्रभृति विज्ञोंने प्रस्तुत घटना का उट्टङ्कन करते हुए उस युगल को बालक और बालिका बताया है, न कि युवा-युवती। और जब वे बालक थे तो उनका पारस्परिक सम्बन्ध भी भ्रातृ-भगिनी रूप में ही था, पति-पत्नी के रूप में नहीं, अतः स्पष्ट है कि श्री ऋषभदेव ने सुनन्दा के साथ विवाह किया, वह विधवा विवाह नहीं था। जब उनका पति-पत्नीरूप सम्बन्ध ही नहीं हुआ तो वह विधवा कैसे कही जा सकती है ?

आचार्य जिनसेन ने महापुराण में प्रस्तुत घटना का उल्लेख नहीं किया है और न ऋषभसहजात सुमंगला से ही पाणिग्रहण करवाया है। श्री ऋषभ की अनुमति लेकर नाभि ने ऋषभ के विवाह हेतु दो सुयोग्य सुशील कन्याओं की याचना की।[६९] फलस्वरूप कच्छ महाकच्छ की दो बहिनें, जो सुन्दर और यौवनवती थीं, जिनका नाम "यशस्वी और सुनन्दा" था, उनके साथ नाभि ने ऋषभ का विवाह किया।[७०] भागवत के अनुसार गृहस्थ धर्म की शिक्षा देने के लिए देवराज इन्द्र की दी हुई उनकी कन्या जयन्ती से ऋषभदेव ने विवाह

---

६४. कल्पसूत्र, कल्पलता, व्या० ७, समयसुन्दर पृ० १६८।

६५. कल्पसुबोधिका विनय० पृ० ४८७ सारा० न०।

६६. कल्पसूत्र कल्पार्थबोधिनी पृ० १४४।

६७. कल्पसूत्र कल्पद्रुम कलिका लक्ष्मी० पृ० १४२।

६८. कल्पसूत्र पृ० २६७।

६९. सुरेन्द्रानुमतात्कन्ये सुशीले चारुलक्षणे।
सत्यौ सुरुचिराकारे वरयामास नाभिराट्॥
—महा० पर्व० १५, श्लो० ६६, पृ० ३३०

७०. तन्व्यौ कच्छमहाकच्छजाम्यौ सौम्ये पतिवरे।
यशस्वतीसुनन्दाख्ये स एवं पर्यणीनयत्॥
—महा० १५।७०। पृ० ३३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया।[७१] संभव है सुनन्दा का ही भागवतकार ने जयन्ती नाम दिया हो। क्योंकि श्वेताम्बर ग्रन्थानुसार वह अरण्य में एकाकी प्राप्त हुई थी। उसकी सौन्दर्य-सुषमा अत्यधिक होने के कारण वह वनदेवी के सदृश प्रतीत हो रही थी।[७२] उसके सौन्दर्य तथा सद्गुणों के कारण ही भागवतकार ने उसे इन्द्र की पुत्री समझा है। और पुत्री समझकर वर्णन किया है। श्वेताम्बर ग्रन्थों की तरह[७३] भागवतकार ने भी उसके सौ सन्तान बताई हैं।[७४]

भरत और बाहुबली का विवाह

श्री ऋषभदेव ने यौगलिक धर्म को मिटाने के लिये जब भरत और बाहुबली युवा हुए तब भरतसहजात ब्राह्मी का पाणि-ग्रहण बाहुबली से करवाया और बाहुबली सहजात सुन्दरी का पाणिग्रहण भरत से करवाया।[७५] इन विवाहों का अनुकरण करके

---

७१. .....गृहमेधिनां धर्माननुशिक्षमाणो जयन्त्यामिन्द्रदत्तायामुभय लक्षणं कर्म समाम्नायाम्नातमातमभियुञ्जन्नात्मजानामात्मसमानानां शतं जनयामास।

—भागवत ५।४।८।५५७

७२. सा य अतीव उक्किट्ठसरीरा देवकण्णाविव तेसु णं वणंतरेसु जह वण-देवता तहा विहरति, तं च एक्कलियं दट्ठुं केति पुरिसा साहन्ति, ताहे नाभी तं दारियं गहाय भणति—उसभस्स भारिया भविस्सति त्ति।

—आवश्यकचूर्णि जिनदास पृ० १५२–१५३

७३. तए णं सुमङ्गलाए बाहू य पीढो य अणुत्तरेहिंतो चइऊणं मिहुणयं जातं,.....ततेणं सा सुमङ्गलादेवी अन्नाणि एगूणपन्नं पुत्तजुयल-गाणि पसवति।

—आवश्यक चूर्णि, जिनदास १५३

७४. भागवत ५।४।८।५५७।

७५. युग्मिधर्मनिषेधाय भरताय ददौ प्रभुः।
सोदर्यां बाहुबलिनः सुन्दरीं गुणसुन्दरीम्॥
भरतस्य च सोदर्यां ददौ ब्राह्मीं जगत्प्रभुः।
भूपाय बाहुबलिने तदादि जनताप्यथ॥

—श्री काललोक प्रकाश सर्ग० ३२, श्लो० ४७–४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जनता ने भी भिन्न गोत्र में समुत्पन्न कन्याओं को उनके माता-पिता आदि अभिभावकों द्वारा दान में प्राप्त कर पाणिग्रहण करना शुरू किया।[७६] इस प्रकार एक नवीन परम्परा प्रारम्भ हुई।

आचार्य जिनसेन ने ब्राह्मी सुन्दरी के विवाह का वर्णन नहीं किया है। प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलाल जी भी उन्हें अविवाहित मानते हैं+ पर उन्होंने प्राचीन श्वेताम्बर ग्रन्थों के कोई भी प्रमाण प्रस्तुत नहीं किये।

ऋषभदेव का काल भारी उथलपुथल का काल था। उस समय प्राकृतिक परिवर्तनों के साथ मानवीय व्यवस्था में भी आमूल परिवर्त्तन हो रहा था। परिस्थितियाँ पलट रही थीं। परिवार प्रथा

(ख) दत्ती व दाणमुसभं दिन्तं
दट्ठुं जणंमिवि पवत्तं।

—आव० निर्यु० गा० २२४

(ग) भगवता युगलधर्म्मव्यवच्छेदाय भरतेन सह जाता ब्राह्मी बाहुबलिने दत्ता, बाहुबलिना सहजाता सुन्दरी भरताय।

—आव० मल० वृत्ति पृ० २००

(घ) भरतस्य सार्थेप्रसूता ब्राह्मी सा बाहुबलाय परिणायिता, बाहुबलसार्थे जाता सुन्दरी सा भरतस्यार्पिता। भरतेन स्त्रीरत्नार्थ रक्षिता, एवं युगलधर्मो निवारितः श्री ऋषभदेवेन।

—कल्पद्रुम कलिका, लक्ष्मी० पृ० १४४।१

७६. (क) भिन्नगोत्रदिकां कन्यां दत्तां पित्रादिभिर्मुदा।
विधिनोपायत प्रायः प्रावर्तत तथा ततः॥

—श्री काललोक प्रकाश स० ३२, श्लो० ४६,

(ख) इति दृष्ट्वा तत आरभ्य प्रायो लोकेऽपि कन्या पित्रादिना दत्ता सती परिणीयते इति प्रवृत्तम्।

—आव० सू० मल० वृत्ति० पृ० २००

+ दर्शन अने चिन्तन, भा० १ 'भगवान् ऋषभदेव अने तेमनो परिवार' पृ० २३६
जैन प्रकाश, ८ फरवरी १९६६, जैन परम्परा के आदर्श

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का प्रारम्भ हो रहा था और संग्रह वृत्ति का सूत्रपात हो चला था। ऐसी स्थिति में अपराधवृत्ति का विकास होना भी स्वाभाविक था और वह हो रहा था।

सर्वप्रथम राजा

पूर्व में यह बताया जा चुका है कि श्री ऋषभदेव के पिता 'नाभि' अन्तिम कुलकर थे। जब उनके नेतृत्व में ही धिक्कारनीति का उल्लंघन होने लगा, प्राचीन मर्यादाएँ विच्छिन्न होने लगीं, तब उस अव्यवस्था से यौगलिक घबराकर श्री ऋषभदेव के पास पहुँचे और उन्हें सारी स्थिति का परिज्ञान कराया।[७७] ऋषभदेव ने कहा—"जो मर्यादाओं का अतिक्रमण कर रहे हैं उन्हें दण्ड मिलना चाहिए और यह व्यवस्था राजा ही कर सकता है, क्योंकि शक्ति के सारे स्रोत उसमें केन्द्रित होते हैं।" समय को परखने वाले नाभि ने यौगलिकों की विनम्र प्रार्थना पर ऋषभदेव का राज्याभिषेक कर "राजा" घोषित किया।[७८] ऋषभदेव राजा बने और शेष जनता प्रजा। इस प्रकार पूर्व चली आ रही "कुलकर" व्यवस्था का अन्त हुआ और एक नवीन अध्याय का प्रारम्भ हुआ।

राज्याभिषेक के समय युगलसमूह कमलपत्रों में पानी लाकर ऋषभदेव के पद-पद्मों का सिंचन करने लगे। उनके विनीत स्वभाव

---

७७. नीतीण अइक्कमणे निवेयणं उसभसामिस्स
—आव० नि० गा० १६३ म० वृ० प० १६४
(ख) आवश्यक चूर्णि—पृ० १५३

७८. राया करेइ दंडं सिट्ठे ते बेंति अम्हवि स होउ।
मग्गह य कुलगरं, सो य बेइ उसभो य भे राया॥
—आव० नि० गा० १६४ म० वृ० १६४
(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० १५३–१५४
(ग) विदितानुरागमापौरप्रकृतिजनपदो राजा।
नाभिरात्मजं समयसेतु रक्षायामभिषिच्य……॥
—श्री मद्भागवत ५।४।५ पृ० ५५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को लक्ष्य में रखकर नगरी का नाम "विनीता" रखा[७९], उसका अपर नाम अयोध्या भी है।[८०]

उस प्रान्त क नाम विनीत भूमि[८१] और "इक्खाग भूमि"[८२] पड़ा। कुछ समय के पश्चात् प्रस्तुत प्रान्त मध्यदेश के नाम से प्रख्यात हुआ।[८३]

राज्य-व्यवस्था का सूत्रपात

इसी प्रकार श्री ऋषभदेव ने मानव जाति को विनाश के गर्त से बचाने के लिए और राज्य की सुव्यवस्था हेतु आरक्षक दल की स्थापना की, जिसके अधिकारी 'उग्र' कहलाये। मंत्रिमंडल बनाया जिसके अधिकार 'भोग' नाम से प्रसिद्ध हुए। सम्राट् के समीपस्थ जन, जो परामर्श प्रदाता थे वे, 'राजन्य' के नाम से विख्यात हुए और अन्य राजकर्मचारी 'क्षत्रिय' नाम से पहचाने गये।[८४]

---

७९. भिसिणीपत्तोहियरे उदयं घेत्तुं छुहन्ति पाएसु।
साहु विणीया पुरिसा, विणीयनयरी अह निविट्ठा॥
—आव० नि० गा० १९६ म० वृ० १९५।१

(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० १५४।

८०. मध्येऽर्धभरतस्याशु चक्रे वैश्रवणः पुरम्।
साकेतं नामतः ख्यातं विनीतजनतावृतम्॥
—पुराणसार १८।३।३६

८१. आवश्यक सूत्र मल० वृत्ति० प० १५७–२।

८२. (क) आवश्यक सूत्र म० वृत्ति० प० १६३।
(ख) आव० नि० हारिभद्रीय टीका प० १२०–२।

८३. आवश्यक निर्युक्ति हारि० टी० गा० १५१ प० १०९–२।

८४. (क) उग्गा भोगा रायण्ण खत्तिया संगहो भवे चउहा।
आरक्खगुरुवयंसा सेसा जे खत्तिया ते उ॥
—आव० नि० गा० १९८, म० वृ० प० १९५।१

(ख) एवं तस्स अभिसित्तस्स चउव्विहो रायसंगहो भवति, तं जहा—
उग्गा भोगा राइन्ना खत्तिया। उग्गा जे आरक्खियपुरिसा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुष्टों के दमन एवं प्रजा तथा राज्य के संरक्षणार्थ चार प्रकार की सेना व सेनापतियों की व्यवस्था की।[८५] साम, दाम, दण्ड और भेद

तेसिं उग्गा दंडणीती ते उग्गा, भोगाणाम जे पितित्थाणिया सामिस्स, राइन्ना नाम जे सामिस्स समव्वया, अवसेसा खत्तिया।

—आवश्यक चूर्णि, जिनदास पृ० १५४

(ग) तदोग्र-भोग-राजन्य – क्षत्रभेदैश्चतुर्विधान् ।
जनानासूत्रयद् विश्वस्थितिनाटकसूत्रभृत् ।।
आरक्षपुरुषा उग्रा, उग्रदण्डाधिकारिणः ।
भोगा मन्त्र्यादयो भर्तुस्त्रायस्त्रिंशा हरेरिव ।।
राजन्या जज्ञिरे ते ये, समानवयसः प्रभोः ।
अवशेषास्तु पुरुषा, बभूवुः क्षत्रिया इति ।।

—त्रिषष्ठि १।२।९७४ से ९७६

८५. ओंकार इव मन्त्राणां, नृपाणां प्रथमो नृपः ।
अपत्यानि निजानीव, पालयामास स प्रजाः ।।
असाधुशासने साधुपालने कृतकर्मणः ।
प्रत्यङ्गानि स्वकानीव, मन्त्रिणो विदधे विभुः ।।
चौर्यादिरक्षणे दक्षानारक्षानप्यसूत्रयत् ।
सुत्रामेव लोकपालान्, राजा वृषभलाञ्छनः ।।
अनीकस्याङ्गमुत्कृष्टमुत्तमाङ्गं तनोरिव ।
राज्यस्थित्यै राजहस्ती, हस्तिनः स समग्रहीत् ।।
आदित्यतुरगस्पर्द्धयेवात्युद्धुरकन्धरान् ।
बन्धुरान् धारयामास, तुरगान् वृषभध्वजः ।।
सुश्लिष्टकाष्ठघटितान्, स्यन्दनान् नाभिनन्दनः ।
विमानानीव भूस्थानि, सूत्रयामास च स्वयम् ।।
सुपरीक्षितसत्त्वानां, पत्तीनां च परिग्रहम् ।
नाभिसूनुस्तदा चक्रे, चक्रवर्तिभवे यथा ।।
नव्यसाम्राज्यसौधस्य, स्तम्भानिव बलीयसः ।
अनीकाधिपतींस्तत्र, स्थापयामास नाभिभूः ।।

—त्रिषष्ठि० १।२।९२५ से ९३२ प० ६३–६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नीति का प्रचलन किया।[८६] चार प्रकार की दण्ड-व्यवस्था निर्मित की। (१) परिभाष, (२) मण्डलबन्ध, (३) चारक, (४) छविच्छेद।[८७]

परिभाष

कुछ समय के लिये अपराधी व्यक्ति को आक्रोशपूर्ण शब्दों में नजरबन्द रहने आदि का दण्ड देना।

मण्डलबन्ध

सीमित क्षेत्र में रहने का दण्ड देना।

चारक

बन्दीगृह में बन्द करने का दण्ड देना।

छविच्छेद

करादि अंगोपाङ्गों के छेदन का दण्ड देना।

ये चार नीतियाँ कब चलीं, इसमें विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कुछ विज्ञों का मन्तव्य है कि प्रथम दो नीतियाँ ऋषभ के समय चलीं[८८] और दो भरत के समय। आचार्य अभयदेव के मन्तव्यानुसार ये चारों नीतियाँ भरत के समय चलीं।[८९] आचार्य भद्रबाहु और आचार्य

---

८६. स्वामी समादामभेददण्डोपायचतुष्टयम्।
जगद्व्यवस्थानगरीचतुष्पथमकल्पयत् ॥
—त्रिषष्ठि० १।२।९५९

(ख) णीतीओ उसभसामिम्मि चेव उप्पनाओ।
—आवश्यक चूर्णि पृ० १५६

८७. स्थानाङ्ग वृत्ति ७।३।५५७।

८८. आद्यद्वयमृषभकाले अन्ये तु भरतकाले इत्यन्ये।
—स्थानाङ्ग वृत्ति ७।३।५५७

८९. परिभासणा उ पढमा, मण्डलबन्धम्मि होई बीया तु।
चारग छविछेदावि, भरहस्स चउव्विहा नीई ॥
—स्थानाङ्ग वृत्ति ७।३।५५७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मलय गिरी के अभितानुसार बन्ध (बेड़ी का प्रयोग) और घात (डण्डे का प्रयोग) ऋषभनाथ के समय प्रारम्भ हो गये थे।[९०] और मृत्यु दण्ड का आरम्भ भरत के समय हुआ।[९१] जिनसेनाचार्य के अनुसार वधबन्धन आदि शारीरिक दण्ड भरत के समय चले।[९२]

खाद्यसमस्या का समाधान

कन्द, मूल, पत्र, पुष्प और फल ये ऋषभदेव के पूर्ववर्त्ती मानवों का आहार था।[९३] किन्तु जनसंख्या की अभिवृद्धि होने पर कन्द मूल

(ख) परिहासणा उ पढमा, मंडलिबंधो उ होइ बीया उ।
चारगछविछेयाई भरहस्स चउव्विहा नीती ॥
—आवश्यक भाष्य गा० ३

९०. निगडाइजमो बन्धो, घातो दंडादितालणया।
—आवश्यक निर्युक्ति० गा० २१७

(ख) बन्धो निगडादिभिर्यम :— संयमनं, घातो दण्डादिभिस्ताडना, एतेऽपि अर्थशास्त्रबन्धघातास्तत्काले यथायोगं प्रवृत्ता।
— आव० नि० मल० वृत्ति प० १९९–२

९१. मारणया जीववहो जन्ना नागाइयाण पूयातो।
—आव० नि० गा० २१८

(ख) मारणं जीववधो-जीवस्य जीविताद् व्यपरोपणं, तच्च भरतेश्वरकाले समुत्पन्नं।
—आव० नि० म० वृ० प० १९९।२

९२. शरीरदण्डनञ्चैव वधबन्धादिलक्षणम्।
नृणां प्रबलदोषाणां भरतेन नियोजितम् ॥
—महापुराण—तृतीय पर्व० श्लो० २१६–पृ० ६५

९३. आसी य कंदहारा मूलाहारा य पत्तहारा य।
पुप्फफलभोइणोऽवि य जइया किर कुलगरो उसभो ॥
—आव० नि० गा० २०३

(ख) आव० मूलभाष्य गा० ५ हारिभद्रीया वृत्ति० प० १६०

(ग) आवश्यक चूर्णि-जिनदास० पृ० १५४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न होने से मानव ने अन्नादि का उपयोग प्रारम्भ किया। किन्तु पकाने के साधन का उस समय ज्ञान न होने से कच्चे अन्न का उपयोग आरम्भ हुआ। आगे चलकर कच्चा अन्न दुष्पाच्य होने लगा तो लोग पुनः श्री ऋषभदेव के पास पहुँचे और उनसे अपनी समस्या का समाधान माँगा। श्री ऋषभदेव ने हाथ से मलकर खाने की सलाह दी। कालक्रम से जब वह भी दुष्पच्य हो गया तो पानी से भिगोकर और मुट्ठी व बगल में रखकर गर्म कर खाने की राय दी।[९४] उससे भी अजीर्ण की व्याधि समाप्त नहीं हुई। श्री ऋषभदेव अग्नि के सम्बन्ध में जानते थे पर वह काल एकान्त स्निग्ध था, अग्नि उत्पन्न नहीं हो सकती थी। अग्नि उत्पत्ति के लिए एकान्त स्निग्ध और एकान्त रुक्ष दोनों ही काल अनुपयुक्त होते हैं।[९५] समय के कदम आगे बढ़े। जब काल स्निग्ध-रुक्ष हुआ तब लकड़ियों को घिसकर अग्नि पैदा की और पात्र निर्माण कर तथा पाक-विद्या सिखाकर खाद्य-समस्या का समाधान किया।[९६] संभवतः इसी कारण अथर्ववेद ने

---

९४. आसीय पाणिघंसी तिम्मिय तंदुलपवालपुडभोई।
हत्थयलपुडाहारा जइया किल कुलगरो उसभो॥
घंसेऊणं तिम्मण घंसणतिम्मणपवालपुडभोई।
घंसणतिम्मपवाले हत्थउडे कक्खसेए य॥

—आव० नि० गा० २०६–२०७

(ख) आव० सू० हारिभद्रीयावृत्ति० मूल भाष्य ८ प० १३१।१

९५. (क) तदा कालस्य एकान्तस्निग्धतया सत्यपि यत्ने वह्न्युत्पादाभावात्, भगवांस्तु विजानाति न एकान्तस्निग्धरूक्षयोः कालयोर्वह्न्युत्पादः किन्तु विमात्रया स्निग्धरूक्षकाले, ततो नादिष्टवानिति।

—आव० मल० वृ० प० १९७।१

(ख) आवश्यक चूर्णि, जिनदास० पृ० १५४–१५५

९६. पक्खेवडहणमोसहि कहणं निग्गमण हत्थिसीसम्मि।
पयणारंभपवित्ती ताहे कासीय ते मणुया॥

—आव० नि० गा० २०९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषभसूक्त में भगवान् श्री ऋषभदेव की अन्य विशेषणों के साथ "जात वेदस्" [अग्नि] के रूप में भी स्तुति की है।[९७]

भगवान् श्री ऋषभदेव सर्वप्रथम वैज्ञानिक और समाजशास्त्री थे। उन्होंने समाज की रचना की। भागवत में आता है, कि एक साल वृष्टि न होने से लोग भूखे मरने लगे, सर्वत्र "त्राहि-त्राहि" मच गई, तब ऋषभदेव ने आत्मशक्ति से पानी बरसाया और उस भयंकर अकाल-जन्य संकट को दूर किया।+ प्रस्तुत घटना इस बात को प्रकट करती है कि उस समय खाद्य वस्तुओं की कमी आ चुकी थी, जनता पर अभाव की काली घटाएँ घिरी हुई थीं, उसे उन्होंने दूर किया। वर्षा बरसाने के कारण वे वर्षा के देवता के रूप में भी प्रसिद्ध हैं।

कला का अध्ययन

सम्राट् श्री ऋषभदेव ने अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को बहत्तर कलाओं[९८] का और कनिष्ठ पुत्र बाहुबली को प्राणी-लक्षणों का ज्ञान कराया।[९९] पुत्री ब्राह्मी को अठारह लिपियों का अध्ययन

---

९७. अथर्ववेद ९।४।३।

\+ श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ५, अ० ४, कण्डिका ३।

९८. देखिए परिशिष्ट।

९९. भरहस्स रूवकमं, नराइलक्खणमहोइयं बलिणो।

—आवश्यक निर्युक्ति० गा० २१३

(ख) भरहस्स चित्तकम्मं उवदिट्ठं, बाहुबलिस्स लक्खणं थीपुरिसमादीणं, माणं ओमाणं पडिमाणं एवं तदा पवत्तं।

—आवश्यक चूर्णि० जिन० पृ० १५६

(ग) द्वासप्ततिकलाकाण्डं, भरतं सोऽध्यजीगपत्।
ब्रह्म ज्येष्ठाय पुत्राय ब्रूयादिति नयादिव॥
भरतोऽपि स्वसोदर्यास्तनयानितरानपि।
सम्यगध्यापयत् पात्रे, विद्या हि शतशाखिका॥
नाभेयो बाहुबलिनं भिद्यमानान्यनेकशः।
लक्षणानि च हस्त्यश्वस्त्रीपुंसानामजिज्ञपत्॥

—त्रिषष्ठि १।२।९६० से ९६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कराया[100] और सुन्दरी को गणित विद्या का परिज्ञान कराया।[101] व्यवहारसाधन-हेतु मान [माप], उन्मान [तोला, मासा, आदि वजन]

(घ) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृत्ति।

(ङ) कल्पसूत्र सुबोधिनी टीका पृ० ४९६ साराभाई नवाब०

१००. लेहं लिवीविहाणं जिणेणं बंभीए दाहिणकरेणं।

—आव० नि० गा० २१२

(ख) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति, भाष्य० गा० ६, प० १३२।

(ग) विशेषावश्यक भाष्य० वृत्ति० १३२।

(घ) अष्टादश लिपीर्ब्राह्म्या अपसव्येन पाणिना।

—त्रिषष्ठि० १।२।९६३

(ङ) बंभीए दाहिणहत्थेण लेहो दाइतो।

—आवश्यक चूर्णि पृ० १५६

(च) कल्पसूत्र, सुबोधिका टीका० साराभाई पृ० ४९६।

(छ) ऋषभदेव ने ही सम्भवतः लिपि-विद्या के लिए लिपिकौशल का उद्भावन किया। ऋषभदेव ने ही सम्भवतः ब्रह्म-विद्या की शिक्षा के लिए उपयोगी ब्राह्मी लिपि का प्रचार किया था।

—हिन्दी विश्व-कोष श्री नगेन्द्रनाथ वसु, प्र० भा० पृ० ६४

१०१. गणियं संखाणं सुन्दरीए वामेण उवइट्ठं।

—आवश्यक निर्युक्ति गा० २१२

(ख) सुन्दरीय वामहत्थेण गणितं।

—आवश्यकचूर्णि पृ० १५६

(ग) विशेषावश्यक भाष्य वृत्ति० १३२।

(घ) आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० १३२।

(ङ) दर्शयामास सव्येन सुन्दर्या गणितं पुनः।

—त्रिषष्टि० १।२।९६३

(च) विभुः करद्वयेनाभ्यां लिखन्नक्षरमालिकाम्।
उपादिशल्लिपिं संख्यास्थानं चाङ्कैरनुक्रमात्॥

—महापुराण १६।१०४।३५५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवमान [गज, फुट, इंच] व प्रतिमान [छटांक, सेर, मन, आदि] सिखाये।[१०२] मणि आदि पिरोने की कला भी बताई।[१०३]

इस प्रकार सम्राट् श्री ऋषभदेव ने प्रजा के हित के लिए, अभ्युदय के लिए पुरुषों को बहत्तर कलाएँ, स्त्रियों को चौंसठ कलाएँ और सौ शिल्पों का परिज्ञान कराया।[१०४] असि, मषि, और कृषि [सुरक्षा, व्यापार, उत्पादन] की व्यवस्था की।[१०५] अश्व, हस्ती, गायें, आदि

---

१०२. मागुम्माणवमाणंपमाणगणिमाइ वत्थूणं।

—आवश्यक निर्युक्ति गा० २१३

१०३. मणियाई दोराइसु पोता तह सागरंमि वहणाइं।
ववहारो लेहवणं कज्जपरिच्छेयणत्थं वा॥

—आवश्यक निर्युक्ति गा० २१४

(ख) आवश्यक सूत्र हारिभद्रीयावृत्ति मूल भाष्य गा० ११ प० १३२

१०४. .....रज्जवासमज्झे वसमाणे लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउण-रुयपज्जवसाणाओ बाहत्तरिं कलाओ चोवट्ठिं महिलागुणे सिप्पसयं च कम्माणं तिन्नि वि पयाहियाए उवदिसइ।

—कल्पसूत्र, सू० १९५। पृ० ५७, पुण्यविजय सं०

(ख) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सू० ३६, पृ० ७७ अमो० सं०।

(ग) एतच्च सर्वं सावद्यमपि लोकानुकम्पया।
स्वामी प्रवर्त्तयामास, जानन् कर्तव्यमात्मनः॥

—त्रिषष्ठि १।२।९७१

१०५. असिर्मषिः कृषिर्विद्या वाणिज्यं शिल्पमेव च।
कर्माणीमानि षोढा स्युः प्रजाजीवनहेतवः॥
तत्र वृत्तिं प्रजानां स भगवान् मतिकौशलात्।
उपादिक्षत् सरागो हि स तदासीज्जगद्गुरुः॥
तत्रासिकर्म सेवायां मषिर्लिपिविधौ स्मृता।
कृषिर्भूकर्षणे प्रोक्ता विद्या शास्त्रोपजीवने॥
वाणिज्यं वणिजां कर्म, शिल्पं स्यात् करकौशलम्।
तच्च चित्रकलापत्रच्छेदादि बहुधा स्मृतम्॥

—महापुराण १७९ से १८२, पर्व १६ पृ० ३६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पशुओं का उपयोग प्रारम्भ किया।[१०६] जीवनोपयोगी प्रवृत्तियों का विकास कर जीवन को सरस, शिष्ट और व्यवहार योग्य बनाया।[१०७]

वर्णव्यवस्था

यौगलिकों के समय में वर्ण-व्यवस्था नहीं थी। सम्राट् श्री ऋषभदेव ने क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों की स्थापना की।[१०८] यह वर्णन आवश्यक निर्युक्ति, आवश्यक चूर्णि, आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित्र-प्रभृति श्वेताम्बर ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से नहीं है। परवर्ती विज्ञों ने उस पर

(ख) प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषुः।
शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः॥
—वृहत्स्वयम्भू स्तोत्र, समन्तभद्राचार्य

१०६. आसा हत्थी गावो गहिआइं रज्जसंगहनिमित्तं।
घित्तूण एवमाई चउव्विहं संगहं कुणइ॥
—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति गा० २०१ पृ० १२८

१०७. कलाद्युपायेन प्राप्तसुखवृत्तिकस्य चौर्यादिव्यसनासक्तिरपि न स्यात्, कर्माणि च कृषिवाणिज्यादीनि जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नानि, त्रीण्येतानि प्रजाया हितकराणि निर्वाहाभ्युदयहेतुत्वात्
—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति-वृत्ति, २ वक्षस्कार

(ख) पहुणा उ देसियाइं सव्वकलासिप्पकम्माइं
—आवश्यक निर्युक्ति० गा० २२६

(ग) अन्यदा सुखमासीनं पुरुं नाभिप्रचोदिताः॥
उपतस्थुः प्रजाः सर्वा जीविकोपायमीप्सवः॥
किं नाथ करवामेति स्थिता वीक्ष्यानुकम्पया॥
प्रजाभ्यो दर्शयामास कर्मशिल्पकलागुणान्॥
—पुराणसार १५-१६।३।३६

१०८. उत्पादितास्त्रयो वर्णाः तदा तेनादिवेधसा।
क्षत्रियाः वणिजः शूद्राः क्षतत्राणादिभिर्गुणैः॥
—महापुराण १८३।१६।३६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवश्य कुछ लिखा है,[१०९] पर दिगम्बराचार्य जिनसेन की तरह विशद रूप से नहीं। यहाँ यह स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक है कि वर्ण-व्यवस्था की संस्थापना वृत्ति और आजीविका को व्यवस्थित रूप देने के लिए थी, न कि ऊँचता व नीचता की दृष्टि से।

मनुष्य जाति एक है। केवल आजीविका के भेद से वह चार प्रकार की हो गई है—व्रतसंस्कार से ब्राह्मण, शस्त्रधारण से क्षत्रिय, न्यायपूर्ण धनार्जन से वैश्य और सेवावृत्ति से शूद्र।[११०] कार्य से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होते हैं।[१११]

आचार्य जिनसेन के मन्तव्यानुसार सम्राट् श्री ऋषभदेव ने स्वयं अपनी भुजाओं में शस्त्र धारण कर मानवों को यह शिक्षा प्रदान की कि अतताइयों से निर्बल मानवों की रक्षा करना शक्तिसम्पन्न व्यक्ति का प्रथम कर्तव्य है। श्री ऋषभदेव के प्रस्तुत आह्वान से कितने ही व्यक्तियों ने यह कार्य स्वीकार किया। वे क्षत्रिय नाम से पहचाने गये।[११२]

---

१०९. अथवा ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रभेदात् तत्र-'ब्राह्मणा ब्रह्मचर्येण, क्षत्रियाः शस्त्रपाणयः, कृषिकर्मकरा वैश्याः शूद्राः प्रेक्षणकारकाः।'

—कल्पलता-समयसुन्दर गणी पृ० १९९

(ख) पउमचरियं-विमलसूरि उ० ३ गा० १११–११६

(ग) पश्चाच्चतुर्वर्णस्थापनं कृतम्

—कल्पद्रुम कलिका० लक्ष्मी० पृ० १४४

११०. मनुष्यजातिरेकैव जातिनामोदयोद्भवा ।
वृत्तिभेदाहिताद्भेदाच्चातुर्विध्यमिहाश्नुते ॥
ब्राह्मणा व्रतसंस्कारात् क्षत्रियाः शस्त्रधारणात् ।
वणिजोऽर्थार्जनान्न्याय्याच्छूद्रा न्यग्वृत्तिसंश्रयात् ॥

—महापुराण श्लोक० ४५–४६ पर्व० ३८ पृ० २४३ दि० भा०

१११. कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

—उत्तराध्ययन २५।३३

११२. स्वदोर्भ्यां धारयन् शस्त्रं क्षत्रियानसृजद् विभुः ।
क्षतत्राणनियुक्ता हि क्षत्रियाः शस्त्रपाणयः ॥

—महापुराण २४३।१६।३६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री ऋषभदेव ने दूर दूर तक के प्रदेशों की जंघा बल से पदयात्रा कर जन-जन के मन में यह विचारज्योति प्रज्वलित की कि मनुष्य को सतत गतिमान् रहना चाहिए, एक स्थान से द्वितीय स्थान पर वस्तुओं का आयात-निर्यात कर प्रजा के जीवन में सुख का संचार करना चाहिए। जो व्यक्ति प्रस्तुत कार्य के लिए सन्नद्ध हुए, वे वैश्य की संज्ञा से अभिहित किये गये।[११३]

श्री ऋषभदेव ने मानवों को यह प्रेरणा प्रदान की कि कर्म-युग में एक दूसरे के सहयोग के बिना कार्य नहीं हो सकता। अतः ऐसे सेवा-निष्ठ व्यक्तियों की आवश्यकता है—जो बिना किसी भेदभाव के सेवा कर सकें। जो व्यक्ति सेवा के लिए तैयार हुए उनको श्री ऋषभदेव ने शूद्र कहा।[११४]

इस प्रकर शस्त्र धारण कर आजीविका करने वाले क्षत्रिय हुए, खेती और पशु पालन के द्वारा जीविका करने वाले वैश्य कहलाये और सेवा शुश्रूषा करने वाले शूद्र कहलाये।[११५]

ब्राह्मण वर्ण की स्थापना सम्राट् भरत ने की।[११६] स्थापना का

---

११३. ऊरुभ्यां दर्शयन् यात्राम् असृक्षीद् वणिजः प्रभुः।
जलस्थलादियात्राभिः तद्वृत्तिर्वार्त्तया यतः॥
—महापुराण २४४।१६।३६८

११४. न्यग्वृत्तिनियतान् शूद्रान् पद्भ्यामेवासृजत् सुधीः।
वर्णोत्तमेषु शुश्रूषा तद्वृत्तिर्नैकधा स्मृता॥
—महापुराण २४५।१६।३६८

११५. क्षत्रियाः शस्त्रजीवित्वं अनुभूय तदाभवन्।
वैश्याश्च कृषिवाणिज्यपाशुपाल्योपजीविताः॥
—महापुराण १८४।१६।३६२

११६. ·····ताहे भरहो रज्जं ओयवेत्ता ते य भाउए पव्वइए णाऊण अदधितीए भणति—किं मम इयाणिं भोगेहिं? अद्धिति करेति, किं ताए पीवराएवि सिरीए? जा सज्जणा ण पेच्छति (गाथा) जदि भातरो मे इच्छन्ति तो भोगे देमि। भगवं च आगतो, ताहे भाउए भोगेहिं निमन्तेति, ते ण इच्छन्ति वंतं असितुं। ताहे चितेति एतेसिं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतिवृत्त बताते हुए आवश्यक निर्युक्ति, आवश्यक चूर्णि, आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र, और कल्पसूत्र की टीकाओं में लिखा है कि सम्राट् भरत के के सभी अनुज सम्राट् भरत की अधीनता स्वीकार न कर भगवान् श्री ऋषभदेव के पास संयम ग्रहण कर लेते हैं तब सम्राट् भरत उनके

चेव इयाणिं परिचत्तसंगाणं आहारादिदाणेणावि ताव धम्माणुट्ठाणं करेमीति पंचसयाणि सगडाण भरेऊणं असणं ४ ताहे निग्गतो, वन्दिऊणं निमन्तेति, ताहे सामी भणति—इमं आहाकम्मं पुणो य आहडं ण कप्पति साधूणं। ताहे सो भणति—ततो मम पुव्वपवत्ताणि गेण्हन्तु, तंपि ण कप्पति रायपिंडोत्ति ताहे सो महदुक्खेण अभिभूतो भणति—सव्वभावेण अहं परिचत्तो तातेहिं, एवं सो ओहयमणसंकप्पो अच्छति,.....ताहे सो तं भत्तपाणं आणीतं भणति किं कायव्वं ? ताहे सक्को भणति - जे तव गुणुत्तरा ते पूएहि.....ताहे भरहो सावए सद्दावेत्ता भणति—"मा कम्मं पेसणादि वा करेह, अहं तुब्भं वित्तिं कप्पेमि, तुब्भेहिं पढन्तेहिं सुणन्तेहिं जिणसाधुसुस्सूसणं कुणन्तेहिं अच्छियव्वं। ताहे ते दिवसदेवसियं भुंजन्ति, ते य भणन्ति—जहा तुब्भं जिता अहो भवान् वर्द्धते भयं मा हणाहित्ति एवं भणितो सन्तो आसुरुत्तो चिन्तेति—केण हि जितो ? ताहे से अप्पणो मती उप्पज्जति कोहादिएहिं जितो मिति, एवं भोसप्पमत्तं संभारेंति एवं ते उप्पन्ना माहणा णाम।

—आवश्यक चूर्णि जिन० पृ० २१२–१४

(ख) भरतोऽपि भ्रातृप्रव्रज्याकर्णनात् सञ्जातमनस्तापोऽधृतिं चक्रे, कदाचिद्भोगादीन् दीयमानान् पुनरपि गृह्णन्तीत्यालोच्य भगवत्समीपं चागम्य निमन्त्रयंश्चतान् भोगैर्निराकृतश्चिन्तयामास एतेषामेवेदानीं परित्यक्तसङ्गानां आहारदानेऽपि तावद्धर्मानुष्ठानं करोमीति पञ्चभिः शकटशतैर्विचित्रमाहारमानाय्योपनिमन्त्र्याधाकर्माहृतं च न कल्पते यतीनामिति प्रतिषिद्धेऽकृतकारितेनान्येन निमन्त्रितवान् देवराडाह-गुणोत्तरान् पूजयस्व। सोऽचिन्तयत् के मम साधुष्वतिरेकेण जात्यादिभिरुत्तरा ?, पर्यालोचयता ज्ञातं—श्रावका विरताविरतत्वाद् गुणोत्तराः तेभ्यो दत्तमिति.....भरतश्च श्रावकानाहूयोक्तवान् भवद्भिः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पास जाते हैं और पुनः राज्य ग्रहण करने के लिए अभ्यर्थना करते हैं किन्तु त्यक्त राज्य को वे वमन के समान जानकर पुनः ग्रहण नहीं करते। तब सम्राट् भरत ने भ्राताओं को भोजन कराने हेतु पाँच सौ शकट भोजन मंगवाया और उन्हें भोजन ग्रहण करने के लिए निमंत्रित किया। पर भगवान् श्री ऋषभदेव ने कहा—आधाकर्मी, राज्यपिण्ड आदि आहार श्रमणों के लिए त्याज्य है। शक्रेन्द्र के निर्देशानुसार वह

प्रतिदिनं मदीयं भोक्तव्यं कृष्यादि च न कार्यं २ स्वाध्याय-परैरासितव्यं, ३ भुक्ते च मदीयगृहद्वारासन्नव्यवस्थितैर्वक्तव्यम् 'जितो भवान् वर्द्धते भयं तस्मान्मा हन मा हनेति' ते तथैव कृतवन्तः।

—आवश्यक मल० वृत्ति० प० २३५।१

(ग) बन्धूनां गृह्णता राज्यमेतेषां किं कृतं मया?
अनारतमतृप्तेन भस्मकामयिनेव हा! ॥
अन्येभ्योऽपि ददानोऽस्मि, लक्ष्मीं भोगफलामिमाम्।
तच्च मे भस्मनि हुतमिव मूढस्य निष्फलम् ॥
काकोऽप्याहूय काकेभ्यो, दत्त्वाऽन्नाद्युपजीवति।
ततोऽपि हीनस्तदहं, भोगान् भुञ्जे विना ह्यमून् ॥
दीयमानान् यदि पुनर्भोगान् भूयोऽपि मच्छुभैः।
आददीरन्नमी भिक्षां, मासक्षपणिका इव ॥
एवमालोच्य भरतः पादमूले जगद्गुरोः।
भ्रातॄन् निमन्त्रयामास भोगाय रचिताञ्जलिः ॥
प्रभुरप्यादिदेशैवमृज्वाशय! विशाम्पते!
भ्रातरस्ते महासत्त्वाः प्रतिज्ञातमहाव्रताः ॥
संसारासारतां ज्ञात्वा परित्यक्तपूर्विणः।
न खलु प्रतिगृह्णन्ति भोगान् भूयोऽपि वान्तवत् ॥
× × × ×
एवं विचिन्त्य शकटशतैः पञ्चभिरुच्चकैः।
अनाय्याऽऽहारमनुजान् न्यमन्त्रयत् स पूर्ववत् ॥
स्वामी भूयोऽप्युवाचैवमन्नादि भरतेश्वरः।
आधाकर्माऽऽहृतं जातु यतीनां न हि कल्पते ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोजन विशिष्ट श्रावकों को प्रदान किया और प्रतिदिन उन्हें भरत के भोजनालय में ही भोजनहेतु निमंत्रण दिया गया, और उन्हें यह आदेश दिया गया कि सांसारिक प्रवृत्तियों का परित्याग कर स्वाध्याय ध्यान आदि में तल्लीन रहें तथा मुझे यह उपदेश देते रहें कि "जितो भवान्, वर्धते भयं, तस्मात् मा हन माहन" आप जीते जा रहे हैं, भय बढ़ रहा है एतदर्थ आप किसी का हनन न करें। उन श्रद्धालु-श्रावकों ने भरत के आदेश एवं निर्देशानुसार प्रस्तुत कार्य स्वीकार किया। सम्राट् भरत ने उनके स्वाध्यायहेतु आर्य वेदों का निर्माण किया।+

जब भोजनलुब्धक श्रावकों की संख्या दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ने लगी, तब सम्राट् भरत ने सच्चे श्रावकों की परीक्षा की, और जो उस परीक्षण प्रस्तर पर खरे उतरे उन्हें सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र के प्रतीक रूप में तीन रेखाओं से चिह्नित कर दिया गया।[११७] माहण का उपदेश देने से वे ब्राह्मण कहलाये,[११८] और वे रेखाएं आगे चलकर यज्ञोपवीत के रूप में प्रचलित हो गईं।

भरतोऽथ समाहूय, श्रावकानभ्यधादिदम्।
गृहे मदीये भोक्तव्यं युष्माभिः प्रतिवासरम्॥
कृष्यादि न विधातव्यं किन्तु स्वाध्यायतत्परैः।
अपूर्वज्ञानग्रहणं कुर्वाणैः स्थेयमन्वहम्॥
भुक्त्वा च मेऽन्तिकगतैः पठनीयमिदं सदा।
जितो भवान् वर्धते भीस्तस्मान्मा हन मा हन॥
—त्रिषष्ठि० १।६।१९० से २२९

\+ "वेदे कासीयत्ति" आर्यान् वेदान् कृतवांश्च भरत एव, तत्स्वाध्याय-निमित्तमिति।
—आवश्यकनिर्युक्ति गा० ३६६ की मलयगिरिवृत्ति पृ० २३६

११७. ज्ञानदर्शनचारित्रलिङ्गं रेखात्रयं नृपः।
वैकक्ष्यमिव काकिण्या विदधे शुद्धिलक्षणम्॥
—त्रिषष्ठि १।६। २४१
(ख) आवश्यक चूर्णि० पृ० २१४।

११८. क्रमेण माहनास्ते तु, ब्राह्मणा इति विश्रुताः।
काकिणीरत्नलेखास्तु, प्रापुर्यज्ञोपवीतताम्॥
—त्रिषष्ठि १।६।२४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महापुराण के अनुसार सम्राट् भरत षट्खण्ड पर दिग्विजय प्राप्त कर और अपार धन लेकर जब अयोध्या लौटे तो उनके मानस में यह संकल्प उत्पन्न हुआ कि इस विराट् धन का त्याग कहाँ करना चाहिए ?[११९] इसका पात्र कौन व्यक्ति हो सकता है ? प्रतिभामूर्ति भरत ने शीघ्र ही निर्णय किया कि ऐसे विलक्षण व्यक्तियों को चुनना चाहिए, जो तीनों वर्णों को चिन्तन-मनन का आलोक प्रदान कर सकें।

सम्राट् भरत ने एक विराट् उत्सव का आयोजन किया। उसमें नागरिकों को निमंत्रित किया। विज्ञों की परीक्षा के लिए महल के मार्ग में हरी घास फल फूल लगा दिये।[१२०] जो व्रतरहित थे वे उस पर होकर महल में पहुँच गये और जो व्रती थे वे वहीं पर स्थित हो गये।[१२१] सम्राट् ने महल में न आने का कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि देव, हमने सुना है कि हरे अंकुर आदि में अनन्त निगोदिया जीव रहते हैं, जो नेत्रों से भी निहारे नहीं जा सकते। यदि हम आपके पास प्रस्तुत मार्ग से आते हैं तो जो शोभा के लिए नाना प्रकार के सचित्त फल-फूल और अंकुर बिछाये गये है उन्हें हमें रौंदना

---

११९. भरतो भारतं वर्षं निर्जित्य सह पार्थिवैः।
षष्ट्या वर्षसहस्रैस्तु दिशां निवृते जयात्॥
कृतकृत्यस्य तस्यान्तश्चिन्तेयमुदपद्यत।
परार्थे सम्पदास्माकी सोपयोगा कथं भवेत्॥

—महापुराण ४–५।३८।२४० द्वि० भा०

१२०. हरितैरङ्कुरैः पुष्पैः फलैश्चाकीर्णमङ्गणम्।
सम्भ्राडचीकरत्तेषां परीक्षायै स्ववेश्मनि॥

—महापुराण ११।३८।२४० द्वि० भा०

१२१. तेष्वव्रता विना सङ्गात् प्राविक्षन् नृपमन्दिरम्।
तानेकतः समुत्सार्य शेषानाह्वययत् प्रभुः॥

—महापुराण १२।३८।२४० द्वि० भा०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पड़ता है तथा बहुत से हरितकाय जीवों की हत्या होती है।[१२२] सम्राट् ने अन्य मार्ग से उनको अन्दर बुलवाया[१२३] और उनकी दया वृत्ति से प्रभावित होकर उन्हें ब्राह्मण की संज्ञा दी और दान, मान आदि सत्कार से सम्मानित किया।[१२४]

वर्णोत्पत्ति के सम्बन्ध में ईश्वरकर्तृत्व की मान्यता के कारण वैदिक साहित्य में खासी अच्छी चर्चा है। उस पर विस्तार से विश्लेषण करना, यहाँ अपेक्षित नहीं है। संक्षेप में—पुरुष सूक्त में एक संवाद है और वह संवाद कृष्ण, शुक्लयजु, ऋक् और अथर्व इन चारों वेदों की संहिताओं में प्राप्त होता है।

प्रश्न है—ऋषियों ने जिस पुरुष का विधान किया उसे कितने प्रकारों से कल्पित किया? उसका मुख क्या हुआ? उसके बाहु कौन बताये गये? उसके (जांघ) उरु कौन हुए? और उसके कौन पैर कहे जाते हैं?[१२५]

उत्तर है :—ब्राह्मण उसका मुख था, राजन्यक्षत्रिय उसका बाहु, वैश्य उसका उरु, और शूद्र उसके पैर हुए।[१२६]

---

१२२. सन्त्येवानन्तशो जीवा हरितेष्वङ्कुरादिषु।
निगोता इति सार्वज्ञं देवास्माभिः श्रुतं वचः॥
तस्मान्नास्माभिराक्रान्तम् अद्यत्वे त्वद्गृहाङ्गणम्।
कृतोपहारमार्द्रैः फलपुष्पांकुरादिभिः॥

१२३. कृतानुबन्धना भूयश्चयक्रिणः किल तेऽन्तिकम्।
प्रासुकेन पथाऽन्येन भेजुः क्रान्त्वा नृपाङ्गणम्॥
—महापुराण १५।३८।२४१

१२४. इति तद्वचनात् सर्वान् सोऽभिनन्द्य दृढ़व्रतान्।
पूजयामास लक्ष्मीवान्, दानमानादिसत्कृतैः॥
—महापुराण २०।३८।२४१

१२५. यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य, कौ बाहू, का [वू] अरु, पादा [वु] उच्येते?
—ऋग्वेद संहिता १०।९०; ११–१२

१२६. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥
—ऋग्वेद संहिता–१०।९०।१२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह एक लाक्षणिक वर्णन है। पर पीछे के आचार्य लाक्षणिकता को विस्मृत कर शब्दों से चिपट गये और उन्होंने कहा—ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, उरुओं से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए। एतदर्थ ब्राह्मण को मुखज, क्षत्रिय को बाहुज वैश्य को उरुज और परिचारक को पादज लिखा है।[१२७]

वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर भगवान् श्री ऋषभदेव को "ब्रह्मा" कहा है। संभवतः प्रस्तुत सूक्त का सम्बन्ध भगवान् श्री ऋषभदेव से ही हो।

जैन संस्कृति की तरह वैदिक संस्कृति भी वर्णोत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न मत रखती है। साथ ही जैन संस्कृति की तरह वह भी प्रारम्भ में वर्ण-व्यवस्था जन्म से न मानकर कर्म से मानती थी।[१२८]

(ख) शुक्ल यजुर्वेद संहिता। ३१।१०-११

(ग) किं बाहू किमुरु ?

—अथर्ववेद संहिता १९।६।६

(घ) विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा मुखबाहूरुपादजाः ।
वैराजात् पुरुषाज्जाता य आत्माचारलक्षणाः ।।

—भागवत ११।१७।१३। द्वि० भा० पृ० ८०९

१२७. वक्त्राद् भुजाभ्यामूरुभ्यां पद्भ्यां चैवाथ जज्ञिरे ।
सृजतः प्रजापतेर्लोकानिति धर्मविदो विदुः ।।
मुखजा ब्राह्मणास्तात बाहुजाः क्षत्रियाः स्मृताः ।
ऊरुजा धनिनो राजन् पादजाः परिचारकाः ।।

—महाभारत श्लो० ४-६, अध्याय २९६

१२८. न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वंब्राह्ममिदं जगत् ।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि, कर्मभिर्वर्णतां गतम् ।।

—महाभारत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय अध्याय

साधक-जीवन

●

साधना के पथ पर

सम्राट् श्री ऋषभदेव ने दीर्घकाल तक राज्य का संचालन किया, प्रजा का पुत्रवत् पालन किया, प्रजा में फैली हुई अव्यवस्था का उन्मूलन किया, अन्याय और अत्याचार का प्रतिकार किया, नीति मर्यादाओं को कायम किया। वे प्रजा के शोषक नहीं, पोषक थे, शासक ही नहीं सेवक भी थे। श्रीमद्भागवत के अनुसार उनके शासन काल में प्रजा की एक ही चाह थी कि प्रतिपल प्रतिक्षण हमारा प्रेम प्रभु में

(ख) अप्रवृत्तिः कृतयुगे कर्मणोः शुभपापयोः ।
वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च तदाऽऽसन्न संकरः ।।
त्रेतायुगे त्वविकलः कर्मारम्भः प्रसिद्धयति ।
वर्णानां प्रविभागाश्च त्रेतायां तु प्रकीर्तिताः ।।
शान्ताश्च शुष्मिणश्चैव कर्मिणो दुःखिनस्तथा ।
ततः प्रवर्तमानास्ते त्रेतायां जज्ञिरे पुनः ।।

—वायुपुराण ८।३३।४६।५७ आदि अध्याय

(ग) तस्मान्न गोऽश्ववत् किंचिज्जातिभेदोस्ति देहिनाम् ।
कार्यभेदनिमित्तेन संकेतः कृत्रिमः कृतः ।।

—भविष्य पुराण, अध्याय ४

शिष्टानुग्रहाय, दुष्टनिग्रहाय, धर्मस्थितिसंग्रहाय च, ते च राज्यस्थितिश्रिया सम्यक् प्रवर्तमानाः क्रमेण परेषां महापुरुषमार्गोपदेशकतया चौर्यादिव्यसननिवर्तनतो नारकातिथेर्यानिवारकतया ऐहिका-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही लगा रहे। वे किसी भी वस्तु की चाह नहीं करते थे।[१२९] अन्त में अपना उत्तराधिकारी ज्येष्ठ पुत्र भरत को बनाकर और शेष निन्यानवें पुत्रों को पृथक्-पृथक् राज्य देकर स्वयं साधना के पथ पर बढ़ने के लिए प्रस्तुत हुए।[१३०]

मुष्मिकसुखसाधकतया च प्रशस्ता एवेति। महापुरुषप्रवृत्तिरपि सर्वत्र परार्थत्वव्याप्ता बहुगुणाल्प—दोषकार्यकारणविचारणापूर्विकैवेति। .....स्थानाङ्गपञ्चमाध्ययनेऽपि—धम्मं च णं चरमाणस्स पंच निस्सा ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—छक्काया (१) गणे, (२) राया, (३) गाहावई, (४) सरीर (५) मित्याद्यालापकवृत्तौ राज्ञो निश्रामाश्रित्य राजा नरपतिस्तस्य धर्मसहायकत्वं दुष्टेभ्यः साधुरक्षणादित्युक्तमस्तीति परम-करुणापरीतचेतसः परमधर्मप्रवर्तकस्य ज्ञानत्रितययुक्तस्य भगवतो राजधर्मप्रवर्तकत्वे न कापि अनौचिती चेतसि चिन्तनीया।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति टीका–दूसरा वक्षस्कार

१२९. भगवतर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन् वर्षे न कश्चन पुरुषो वाञ्छत्यविद्यमानमिवात्मनोऽन्यस्मात्कथञ्चन किमपि कर्हिचिदवेक्षते भर्तर्यनुसेवनं विजृम्भितस्नेहातिशयमन्तरेण।

—श्री मद्भागवत ५।४।१८ पृ० ५५८–५५९

१३०. (क) उवदिसित्ता पुत्तसयं रज्जसए अभिसिंचइ।

—जम्बू० सू० ३६ पृ० ७७ अमोल०

(ख) उवदिसइत्ता पुत्तसयं रज्जसए अभिसिंचइ।

—कल्पसूत्र सू० १९५ पृ० ५७ पुण्य०

(ग) त्रिषष्ठि०। १।३।१ से १७ प० ६८

(घ) .....स्वतनयशतजेष्ठं परमभागवतं भगवज्जनपरायणं भरतं धरापालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोर्वरितशरीरमात्रपरिग्रहः.....ब्रह्मावर्तात्प्रवव्राज।

—श्री मद्भागवत ५।५।२८।५६३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दान

अभिनिष्क्रमण के पूर्व श्री ऋषभदेव ने प्रभात के पुण्य-पलों में एक वर्ष तक एक करोड आठ लाख स्वर्ण मुद्राएँ प्रतिदिन दान दीं।[131] इस प्रकार एक वर्ष में तीन अरब अट्ठासी करोड़ और अस्सी लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान दिया।[132] दान देकर, जन-जन के अन्तर्मानस में दान की भव्य-भावना उद्बुद्ध की।

महाभिनिष्क्रमण

भारतीय इतिहास में चैत्र कृष्णा अष्टमी का दिन[133] सदा स्मरणीय रहेगा, जिस दिन सम्राट् श्री ऋषभ राज्य-वैभव को ठुकराकर, भोग-विलास को तिलाञ्जलि देकर, परमात्मत्त्व को जागृत करने के लिए "सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि" सभी पाप प्रवृत्तियों का परित्याग करता हूँ, इस भव्य-भावना के साथ विनीता नगरी से निकलकर सिद्धार्थ उद्यान में, अशोक वृक्ष के नीचे, षष्ठ भक्त के तप

---

१३१. एगा हिरण्णकोडी अट्ठेव अणूणगा सयसहस्सा।
सूरोदयमाईयं दिज्जइ जा पायरासाओ ॥
—आव० नियु० गा० २३९

(ख) त्रिषष्ठि० १।३।२३

१३२. तिण्णेव य कोडिसया अट्ठासीई अ होंति कोडीओ।
असियं च सयसहस्सा एयं संवच्छरे दिण्णं ॥
—आव० नि० गा० २४२

(ख) त्रिषष्टि० १।३।२४।प० ६८

१३३. जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चेत्तबहुले तस्स णं चेत्तबहुलस्स अट्ठमीपक्खेणं।
—कल्पसूत्र सू० १९५ पुण्य० पृ० ५७

(ख) चेत्तबहुलट्ठमीए चउहि सहस्सेहिं सो उ अवरण्हे।
सीया सुदंसणाए सिद्धत्थवणम्मि छट्ठेणं ॥
—आव० नि० गा० ३३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से युक्त होकर सर्वप्रथम परिव्राट् बने।[१३४] भगवान् के प्रेम से प्रेरित होकर उग्रवंश, भोगवंश, राजन्य वंश, और क्षत्रिय वंश के चार सहस्र साथियों ने भी उनके साथ ही संयम ग्रहण किया।[१३५] यद्यपि उन चार

(ग) तदा च चैत्रबहुलाष्टम्यां चन्द्रमसि श्रिते।
नक्षत्रमुत्तराषाढामह्नो भागेऽथ पश्चिमे॥
भवज्जयजयारावकोलाहलमिषाद् भृशम्।
उद्गिरद्भिर्मुदमिव, वीक्ष्यमाणो नरामरैः॥
उच्चखान चतसृभिर्मुष्टिभिः शिरसः कचान्।
चतसृभ्यो दिग्भ्यः शेषामिव दातुमना प्रभुः॥

—त्रिषष्ठि० १।३। ६५ से ६७

१३४. जाव विणीयं रायहाणिं मज्झंमज्झेणं निगच्छइ, निगच्छइत्ता जेणेव सिद्धत्थवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता असोगवरपायवस्स अहे जाव सयमेव चउमुट्ठियं लोयं करेइ२त्ता छट्ठेणं भत्तेणं अप्पाणएणं—

—कल्पसूत्र० सू० १९५ पृ० ५७

(ख) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, सू० ३६ पृ० ८०–८१ अमोल०

१३५. उग्गाणं भोगाणं राइन्नाणं च खत्तियाणं च।
चउहिं सहस्सेहुसभो सेसाउ सहस्सपरिवारा।!

—आव० नि० गा० २४७

(ख) उग्गाणं भोगाणं राइन्नाणं च खत्तियाणं च चउहिं सहस्सेहिं सद्धिं एगं देवदूसमादाय मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए।

—कल्पसूत्र सू० १९५ पृ० ५७

(ग) उग्गाणं भोगाणं रायण्णाणं च खत्तियाणं च।
चउहिं सहस्सेहिं ऊसहो सेसा उ सहस्सपरिवारा॥

—समवायांग १५

(घ) उग्गाणं भोगाणं राइन्नाणं खत्तिआणं चउहिं सहस्सेहिं सद्धिं—

—जम्बूद्वीप० सू० ३६ पृ० ८०–८१ अमोल०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहस्र साथियों को भगवान् ने प्रव्रज्या प्रदान नहीं की, किन्तु उन्होंने भगवान् का अनुसरण कर स्वयं ही लुंचन आदि क्रियाएँ कीं।[१३६]

विवेक के अभाव में

भगवान् श्री ऋषभदेव श्रमण बनने के पश्चात् अखण्ड मौनव्रती बनकर एकान्त-शान्त स्थान में ध्यानस्थ होकर रहने लगे।[१३७] जिनसेन के अनुसार उन्होंने छह महीने का अनशन व्रत अंगीकार किया। श्वेताम्बर साहित्य में ऐसा स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध नहीं होता। वहाँ भिक्षा के सम्बन्ध में जो विवरण मिलता है, वह इस प्रकार है—घोर

(ङ) चतुःसहस्रगणना नृपाः प्राव्राजिषुस्तदा।
गुरोर्ममतमजानाना स्वामिभक्त्यैव केवलम् ॥
यदस्मै रुचितं भर्त्रे तदस्मभ्यं विशेषतः।
इति प्रसन्नदीक्षास्ते केवलं द्रव्यलिङ्गिनः ॥

—महापुराण पर्व १७ श्लो० २१२–२१३ पृ० ३९१

(च) त्रिषष्ठि १।२।७८ से ८० प० ७०।

१३६. चउरो साहस्सीओ, लोयं काऊण अप्पणा चेव।
जं एस जहा काही तं तह अम्हेवि काहामो ॥

—आवश्यक निर्युक्ति गा० ३३७

१३७. (क) णत्थि णं तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबंधे।

—जम्बू० प्र० २ वक्षस्कार सू० ३९

(ख) अथ कायं समुत्सृज्य तपोयोगे समाहितः।
वाचंयमत्वमास्थाय तस्थौ विश्वेड् विमुक्तये ॥
षण्मासानशनं धीरः प्रतिज्ञाय महाधृतिः।
योगैकाग्र्यनिरुद्धान्तर्बहिष्करणविक्रियः ॥

—महापुराण १८।१–२ पृ० ३९७

(ग) जडान्धमूकबधिरपिशाचोन्मादकवदवधूत वेषोऽभिभाष्यमाणोऽपि जनानां गृहीतमौनव्रतस्तूष्णीं बभूव।

—भागवत ५।५।२९ पृ० ५६३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिग्रहों को ग्रहण कर अनासक्त बन भिक्षाहेतु ग्रामानुग्राम विचरण करते थे,[१३८] पर भिक्षा और उसकी विधि से जनता अनभिज्ञ थी, अतः भिक्षा उपलब्ध नहीं होती थी।[१३९] वे चार सहस्र श्रमण चिरकाल तक यह प्रतीक्षा करते रहे कि भगवान् मौन छोड़कर पूर्ववत् हमारी सुध-बुध लेंगे, सुख सुविधा का प्रयत्न करेंगे, पर भगवान् आत्मस्थ रहे, कुछ नहीं बोले। वे द्रव्यलिंगधारी श्रमण भूख-प्यास से संत्रस्त हो सम्राट् भरत के भय से[१४०] पुनः गृहस्थ न बनकर वल्कलधारी तापस आदि हो गये।[१४१] वस्तुतः विवेक के अभाव में साधक साधना से पथभ्रष्ट हो जाता है।

साधक जीवन

भगवान् श्री ऋषभदेव अम्लान चित्त से, अव्यथित मन से भिक्षा के लिए नगरों व ग्रामों में परिभ्रमण करते। भावुक मानव

---

१३८. उसभो वरवसभगई घेत्तूण अभिग्गहं परमघोरं।
वोसट्ठचत्तदेहो विहरइ गामाणुगामं तु॥
—आवश्यक निर्युक्ति गा० ३३८

१३९. न वि ताव जणो जाणइ का भिक्खा केरिसा व भिक्खयरा?
—आवश्यक नि० गा० ३३९

(ख) जदि भिक्खस्स अतीति तो सामितो णे आगतोत्ति वत्थेहिं आसेहि य हत्थीहि आभरणेहिं कन्नाहि य निमन्तेत्ति।
—आवश्यक चूर्णि पृ० १६२

१४०. भरतलज्जया गृहगमनमभ्युक्तम्, आहारमन्तरेण चासितुं न शक्यते—
—आवश्यक नि० मल० पृ० २१६

(ख) जेण जणो भिक्खं ण जाणति दाउं तो जे ते चत्तारि सहस्सा भिक्खं अलभंता तेण माणेण घरंपि ण वच्चन्ति भरहस्स य भएणं।
—आवश्यक चूर्णि पृ० १६२

१४१. ते भिक्खमलभमाणा वणमज्झे तावसा जाता।
—आवश्यक नि० गा० ३३९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् को निहारकर भक्ति-भावना से विभोर होकर अपनी रूपवती कन्याओं को, बढ़िया वस्त्रों को, अमूल्य आभूषणों को और गज, तुरङ्ग, रथ, सिंहासन आदि वस्तुओं को प्रस्तुत करते।[१४२] ग्रहण

(ख) पच्छा वणमतिगता तावसा जाता, कन्दमूलाणि खातिउमारद्धा।
—आवश्यक चूर्णि, पृ० १६२

(ग) सम्भूयाऽऽलोच्य सर्वेऽपि, गङ्गातीरवनानि ते।
भेजुर्बुभुजिरे स्वैरं कन्दमूलफलाद्यथ॥
प्रावर्तन्त ततः कालात् तापसा वनवासिनः।
जटाधराः कन्दफलाद्याहारा इह भूतले॥
—त्रिषष्ठि १।२।१२२–१२३

(घ) केचिद् वल्कलिनो भूत्वा, फलान्यादन् पपुः पयः।
परिधाय परे जीर्णं कौपीनं चक्रुरीप्सितम्॥
अपरे भस्मनोद्गुण्ठ्य, स्वान् देहान् जटिनोऽभवन्।
एकदण्डधराः केचित् केचिच्चासंस्त्रिदण्डिनः॥
प्राणैरार्तास्तदेत्यादिवेषैर्वर्वृतिरे चिरम्।
वन्यैः कशिपुभिः स्वच्छैः जलैः कन्दादिभिश्च ते॥
भरताद् बिभ्यतां तेषां देशत्यागः स्वतोऽभवत्।
ततस्ते वनमाश्रित्य तस्थुस्तत्र कृतोटजाः॥
तदासंस्तापसाः पूर्वं परिव्राजश्च केचन।
पाषण्डिनां ते प्रथमे बभूवुर्मोहदूषिताः॥
—महापुराण १८।५५–५९ पृ० ४०२

१४२. भयवमदीणमणसो संवच्छरमणसिओ विहरमाणो।
कन्नाहि निमंतिज्जइ वत्थाभरणासणेहिं च॥
—आवश्यक नि० गा० ३४१

(ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति प० १४४।

(ग) उत्थायोत्थाय धावित्वा, धावित्वा च ससम्भ्रमम्।
पौरैर्देशान्तरायातबन्धुवत् स्वाम्यवेष्ट्यत॥
कोऽप्युवाचैहि भगवन्! गृहाण्यनुगृहाण नः।
वसन्तोत्सववद् देव!, चिरादसि निरीक्षितः॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने के लिए अभ्यर्थना करते, पर कोई भी विधिवत् भिक्षा न देता। भगवान् उन वस्तुओं को बिना ग्रहण किये जब उलटे पैरों लौट जाते तो वे नहीं समझ पाते कि भगवान् को किस वस्तु की आवश्यकता है ?

श्रीमद्भागवतकार ने भगवान् श्री ऋषभदेव को श्रमण बनने के पश्चात् अज्ञ व्यक्तियों ने जो दारुण कष्ट प्रदान किये उसका शब्द चित्र उपस्थित किया है,[१४३] पर वैसा वर्णन जैन साहित्य में नहीं है। जैन-साहित्य के परिशीलन से यह भी ज्ञात होता है कि उस युग का मानव इतना क्रूर प्रकृति का नहीं था, जितना भागवतकार ने

कोऽप्यवादीदिदं सज्जं, स्नानीयं वसनं जलम्।
तैलं पिष्टातकश्चेति, स्नाहि स्वामिन् प्रसीद नः॥
कोऽप्यूचे स्वोपयोगेन, स्वामिन् ! मम कृतार्थय।
जात्यचन्दनकर्पूरकस्तूरीयक्षकर्दमान् ॥
कोऽप्युवाच जगद्रत्न ! रत्नालङ्करणानि नः।
स्वाङ्गाधिरोपणात् स्वामिन्नलंकुरु दयां कुरु॥
एवं व्यज्ञपयत् कोऽपि, गृहे समुपविश्य मे।
स्वामिन्नङ्गानुकूलानि, दुकूलानि पवित्रय॥
कश्चिदप्यब्रवीदेवं, देव ! देवाङ्गनोपमाम्।
प्रभो ! गृहाण नः कन्यां, धन्याः स्मस्त्वत्समागमात्॥
कोऽप्यूचे पादचारेण, क्रीडयाऽपि कृतेन किम् ?।
इममारोह शैलाभं कुञ्जरं राजकुञ्जर !॥

—त्रिषष्ठि १।३।२५१–२५८

१४३. तत्र-तत्र पुरग्रामाकरखेटवाटखर्वट-शिविर-व्रजघोषसार्थगिरिवनाश्रमादिष्वनुपथमवनिपसदैः परिभूयमानो मक्षिकाभिरिव वनगजस्तर्जनताडनावमेहनष्ठीवनग्रावशकृद्रजःप्रक्षेपपूतिवातदुरुक्तैस्तदविगणयन्नेवा - सत्संस्थान एतस्मिन् देहोपलक्षणे सदपदेश उभयानुभवस्वरूपेण स्वमहिमावस्थानेनासमारोपिताहंममाभिमानत्वादविखण्डितमनाः पृथिवीमेकचरः परिबभ्राम।

—भागवत ५।५।३०।५६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रित किया है। भागवत का प्रस्तुत वर्णन श्रमण भगवान् महावीर के अनार्य देशों में विहरण के समान है।[१४४]

विशिष्ट लाभ

एक वर्ष पूर्ण हुआ। कुरुजनपदीय गजपुर के अधिपति बाहुबली के पौत्र एवं सोमप्रभ राजा के पुत्र श्रेयांस ने स्वप्न देखा कि सुमेरु पर्वत श्याम वर्ण का हो गया है। उसे मैंने अमृत कलश से अभिषिक्त कर पुनः चमकाया।[१४५] नगरश्रेष्ठी सुबुद्धि ने उसी रात्रि में स्वप्न देखा कि सूर्य की हजार किरणें अपने स्थान से चलित हो रही थीं कि श्रेयांस ने उन रश्मियों को पुनः सूर्य में संस्थापित कर दिया।[१४६] राजा

---

१४४. तुलना कीजिये—आचारांग प्रथम श्रुत० अध्या० ६ उद्दे० ३ से।

१४५. छउमत्थो य वरिसं बहलीअंडबइल्लेहिं विहरिऊणं गजपुरं गतो, तत्थ भरहस्स पुत्तो सेज्जंसो, अन्ने भणन्ति बाहुबलिस्स सुतो सोमप्पभो सेयंसो य, ते य दोऽवि जगा णगरसेट्ठी य सुमिणे पासन्ति तं रत्तिं, समागता य तिन्निवि सोमस्स समीवे कहेंति, सेयंसो—सुणह अज्जं मया जं सुमिणे दिट्ठं-मेरू किल चलितो, इहागतो मिलायमाणप्पभो मया य अमयकलसेण अभिसित्तो साभावितो जातो पडिबुद्धो यऽम्हि।

—आवश्यक चूर्णि जिन० पृ० १६२–१६३

(ख) कुरुजणवए गयपुरं नाम नगरं, तत्थ बाहुबलिपुत्तो सोमप्पभो राया, तस्स पुत्तो सेज्जंसो जुवराया, सो सुमिणे मन्दरं पव्वयं सामवण्णयं पासइ, ततो अणेण अमयकलसेण अभिसित्तो अब्भहियं सोभितुमाढत्तो।

—आवश्यक निर्युक्ति मल० वृ० प० २१७

(ग) त्रिषष्ठि १।३।२४४–२४५।

१४६. नगरसेट्ठी सुबुद्धिनामो, सो सूरस्स रस्सीसहस्सं ठाणाओ चलियं पासति, नवरं सिज्जंसेण हत्थुत्तं सो य अहिअयरं तेयसम्पुण्णो जाओ।

—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति प० १४५।१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोमप्रभ ने स्वप्न देखा कि एक महान् पुरुष शत्रुओं से युद्ध कर रहा है, श्रेयांस ने उसे सहायता प्रदान की, जिससे शत्रु का बल नष्ट हो गया।[१४७] प्रातः होने पर सभी स्वप्न के सम्बन्ध में चिन्तन-मनन करने लगे। चिन्तन का नवनीत निकला कि अवश्य ही श्रेयांस को विशिष्ट लाभ होने वाला है।[१४८]

(ख) नगरसेट्ठी सुबुद्धी नाम, सो सुमिणे पासइ-सूरस्स रस्सिसहस्सं ठाणातो चलितं, नवरि सेज्जंसेण हुक्खुत्तं ततो सो सूरो अहिययरतेयसम्पन्नो जातो।

—आवश्यक मल० वृ० प० २१७–२१८

(ग) त्रिषष्ठि० १।३।२४६–२४७।

नोट—आवश्यक चूर्णि में जो स्वप्न नगरश्रेष्ठी का दिया है वह आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति, आवश्यक मलयगिरि वृत्ति और त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र में राजा सोमप्रभ का दिया है और सोमप्रभ का स्वप्न नगर श्रेष्ठी का दिया है।

—लेखक

(घ) सेट्ठी भणती—सुणह जं मया दिट्ठं—अज्ज किल कोऽपि पुरिसो महप्पमाणो महत्ता रिउबलेण सह जुज्झन्तो दिट्ठो तो सेज्जंस सामी य से सहायो जातो, ततो अणेण पराजितं परबलं एयं दट्ठूण म्हि पडिबुद्धो।

—आवश्यक चूर्णि १३३

१४७. (क) राइणा एक्को पुरिसो महप्पमाणो महया रिउबलेण सह जुज्झन्तो दिट्ठो।

—आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, प० १४५

(ख) राइणा सुमिणे एक्को पुरिसो महप्पमाणो महया रिउबलेण जुज्झंतो दिट्ठो, सेज्जंसेण साहज्जं दिण्णं ततो तेण तब्बलं भग्गं ति।

—आवश्यक मल० वृत्ति० प० २१८।१

(ग) त्रिषष्ठि १।३।२४८

१४८. कुमारस्स महतो कोऽवि लाभो भविस्सइ त्ति।

—आवश्यक मल० वृ० प० २१८।१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अक्षय तृतीया

भगवान् श्री ऋषभदेव उसी दिन विचरण करते हुए गजपुर पधारे। चिरकाल के पश्चात् भगवान् को निहार कर पौरजन प्रमुदित हुए। श्रेयांस भी अत्यधिक आह्लादित हुआ। भगवान् परिभ्रमण करते हुए श्रेयांस के यहाँ पधारे।[१४९] भगवान् के दर्शन और भगवदरूप के चिन्तन से श्रेयांस को पूर्वभव की स्मृति उद्बुद्ध हुई।[१५०] स्वप्न का सही तथ्य परिज्ञात हुआ। उसने प्रेमपरिपूरित करों से ताजा आये हुए इक्षु रस के कलशों को ग्रहण कर भगवान् के कर कमलों में रस प्रदान किया।[१५१] इस प्रकार भगवान् श्री ऋषभदेव को

---

१४९. भगवंपि अणाउलो संवच्छरखमणंसि अडमाणो सेयंसभवणमइगतो।
—आव० म० वृ० २१८

१५०. जाइस्सरणं जायं—
—आव० म० वृ० २१८

(ख) सम्प्रेक्ष्य भगवद्रूपं श्रेयाञ्जातिस्मरोऽभवत्।
—महापुराण जिन० ७८।२०।४५२

१५१. (क) गयपुर सेज्जंस खोयरसदाण वसुहार पीढ गुरुपूया।
—आव० निर्युक्ति० गा० ३४५

(ख) उसभस्स उ पारणए
इक्खुरसो आसि लोगनाहस्स।
—आव० नि० गा० ३४४

(ग) उसभस्स पढमभिक्खा,
खोयरसो आसि लोगणाहस्स।
—समवायांग

(घ) ततो विज्ञातनिर्दोषभिक्षादानविधिः स तु।
गृह्यतां कल्पनीयोऽयं रस इत्यवदद् विभुम्।,
प्रभुरप्यञ्जलीकृत्य पाणिपात्रमधारयत्।
उत्क्षिप्योत्क्षिप्य सोऽपीक्षुरसकुम्भानलोठयत्॥
भूयानपि रसः पाणिपात्रे भगवतो ममौ।
श्रेयांसस्य तु हृदये ममुर्न हि मुदस्तदा॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक सम्वत्सर के पश्चात् भिक्षा प्राप्त हुई[१५२] और सर्व प्रथम इक्षुरस का पान करने के कारण वे काश्यप के नाम से भी विश्रुत हुए।[१५३]

स्त्यानो नु स्तम्भितोन्वासीद् व्योम्नि लग्नशिखो रसः।
अञ्जलौ स्वामिनोऽचिन्त्यप्रभावाः प्रभवः खलु॥

ततो भगवता तेन, रसेनाऽकारि पारणम्।
सुरासुरनृणां नेत्रैः पुनस्तद्दर्शनामृतैः॥

—त्रिषष्ठि० १।३।२९१–२९५

(ङ) श्रेयान् सोमप्रभेणामा, लक्ष्मीमत्या च सादरम्।
रसमिक्षोरदात् प्रासुमुत्तानीकृतपाणये॥

—महापुराण जिन० १००।२०।४५४

(च) एएसि णं चउव्वीसाए तित्थगराण चउव्वीसं पढमभिक्खादायारो होत्था तं जहा सिज्जंस····।

—समवायाङ्ग

१५२. संवच्छरेण भिक्खा लद्धा
उसभेण लोगनाहेण।
सेसेहिं बीयदिवसे
लद्धाओ पढमभिक्खाओ॥

—आवश्यक निर्युक्ति गा० ३४२

(ख) संवच्छरेण भिक्खा लद्धा,
उसभेण लोयणाहेण।

—समवायांग

१५३. कासं—उच्छू, तस्स विकारो—कास्यः रसः सो जस्स पाणं सो कासवो उसभ स्वामी।

—दशवैकालिक—अगस्त्यसिंह चूर्णि

(ख) काशो नाम इक्खु भण्णइ, जम्हा त इक्खु पिबंति तेन काश्यपा अभिधीयन्ते।

—दशवैकालिक—जिनदास चूर्णि पृ० १३२

(ग) पुव्वगा य भगवतो इक्खुरसं पिविताइता तेण गोत्तं कासवं ति।

—आवश्यक चूर्णि जिनदास पृ० १५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य जिनसेन के शब्दों में काश्य तेज को कहते हैं। भगवान् श्री ऋषभदेव उस तेज के रक्षक थे अतः काश्यप कहलाये।[१५४]

प्रस्तुत अवसर्पिणी काल में सर्व प्रथम वैशाख शुक्ला तृतीया को श्रेयांस ने इक्षु रस का दान दिया अतः वह तृतीया इक्षु-तृतीया या अक्षय तृतीया पर्व के रूप में प्रसिद्ध हुई।[१५५] दान से वह तिथि भी अक्षय हो गई।

(घ) वर्षीयान् वृषभो ज्यायान्,
पुरुराद्यः प्रजापतिः।
ऐक्ष्वाकुः [कः] काश्यपो ब्रह्मा,
गौतमो नाभिजोऽग्रजः॥

—धनञ्जय नाममाला ११४ पृ० ५७

१५४. काश्यमित्युच्यते तेजः काश्यपस्तस्य पालनात्।

—महापुराण २६६।१६।३७०

१५५. राधशुक्लतृतीयायां दानमासीत् तदक्षयम्।
पर्वाक्षयतृतीयेति, ततोऽद्यापि प्रवर्तते॥
श्रेयांसोपज्ञमवनौ दानधर्मः प्रवृत्तवान्।
स्वाम्युपज्ञमिवाऽशेषव्यवहारनयक्रमः॥

—त्रिषष्ठि० १।३।३०१–३०२

(ख) वैशाख सुदि तृतीयारूपं पर्वत्वेन मान्यं जातं।

—कल्पलता सम० पृ० २०६।१

(ग) तद्दिनं लोके अक्षयतृतीया जाता।

—कल्पद्रुम कलिका पृ० १४६

(घ) वैशाखमासे राजेन्द्र! शुक्लपक्षे तृतीयका।
अक्षया सा तिथिः प्रोक्ता कृत्तिका रोहिणीयुता॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय अध्याय

तीर्थंकर जीवन

●

अरिहन्त के पद पर

एक हजार वर्ष तक श्री ऋषभदेव शरीर से ममत्व रहित होकर वासनाओं का परित्याग कर, आत्म-आराधना, संयम-साधना और मनोमंथन करते रहे।[१५६] जब भगवान् अष्टम तप की साधना करते हुए पुरिमताल नगर के बाहर शकटमुख उद्यान में वटवृक्ष के नीचे

---

१५६. उसभे णं अरहा कोसलिए एगं वाससहस्स
निच्चं वोसट्ठकाये चियत्तदेहे जाव अप्पाणं
भावेमाणस्स एक्कं वाससहस्सं विइक्कंतं ॥

—कल्पसूत्र सू० १९६ पृ० ५८ पुण्य०

(ख) सेणं भगवं वासावासवज्जं हेमन्तगिम्हासु गामे एगराईए नगरे पंचराईए, ववगयहास-सोग-अरइ-रइ-भय-परित्तासे, णिम्ममे णिरहंकारे लहुभूए अगंथे वासी तत्थणं अदुट्ठे चंदणाणु-लेवेणं अरत्ते लेट्ठंमि कंचणम्मि अमे, इहलोए परलोए अपडिवद्धे जीविअ-मरणे निरवकंखे, संसारपारगामी कम्मसंघणिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिए विहरइ । तस्स णं भगवन्तस्स एएणं विहारेणं विहरमाणस्स एगे वाससहस्से विइक्कन्ते ।

—जम्बूद्वीप० सू० ४०–४१ पृ० ८४ अमो०

तओ णं जे से हेमन्ताणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे फग्गुणबहुले तस्स णं फग्गुणबहुलस्स एक्कारसीपक्खेणं पुव्वण्हकालसमयंसि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान-मुद्रा में अवस्थित थे। फाल्गुन कृष्णा ग्यारस का दिन था, पूर्वाह्न का समय था, आत्म-मंथन चरम सीमा पर पहुँचा। आत्मा पर से घन-घाति कर्मों का आवरण हटा, भगवान् को केवल ज्ञान और केवल दर्शन का अपूर्व आलोक प्राप्त हुआ। जैनागमों में जिसे केवल

पुरिमतालस्स नयरस्स बहिया सगडमुहंसि उज्जाणंसि नग्गोहवरपायवस्स अहे अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं आसाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अणंते जाव जाणमाणे पासमाणे विहरइ।

—कल्पसूत्र० सू० १९६ पृ० ५८ पुण्य०

(ख) तित्थयराणं पढमो उसभसिरी विहरिओ निरुवसग्गं।
अट्ठावओ नगवरो अग्गा भूमी जिणवरस्स॥
छउमत्थप्परिआओ वाससहस्सं तओ पुरिमतालें।
निग्गोहस्स य हिट्ठा उप्पन्नं केवलं नाणं॥
फग्गुणबहुले इक्कारसीइ अह अट्ठमेण भत्तेण।
उप्पन्नम्मि अणन्ते महव्वया पंच पन्नवए॥

—आवश्यक नियुक्ति गा० ३३८ से ३४०

(ग) फग्गुणवहुलेक्कारसि उत्तरसाढाहिं नाणमुसभस्स।

—आवश्यक नि० गा० २६३

(घ) अथ व्रतात् सहस्राब्द्यां, फाल्गुनैकादशीदिने।
कृष्णे तथोत्तराषाढास्थिते चन्द्रे दिवामुखे॥
उत्पेदे केवलज्ञानं त्रिकालविषयं विभोः।
हस्तस्थितमिवाऽशेष, दर्शयद् भुवनत्रयम्॥

—त्रिषष्ठि० १।३।३९६–३९७

(ङ) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति० पृ० ८५ अमो०।

(च) समवायाङ्ग १५७ गा० ३३–५।

(छ) लोक प्रकाशः ३२ ; ५४७।

(ज) फाल्गुने मासि तामिस्रपक्षस्यैकादशीतिथौ।
उत्तराषाढ़नक्षत्रे कैवल्यमुदभूद्विभोः॥

—महापुराण, जिनसेन, २०।२६८।४७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञान कहा है उसे ही बौद्ध ग्रन्थों में प्रज्ञा कहा है और सांख्य-योग में विवेकख्याति कहा है।[१५७]

भगवान् को केवल ज्ञान की उपलब्धि वट वृक्ष के नीचे हुई थी अतः वटवृक्ष आज भी आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

सम्राट् भरत का विवेक

आवश्यक निर्युक्ति,[१५८] आवश्यक चूर्णि,[१५९] त्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित्र[१६०] आदि श्वेताम्बर जैन ग्रन्थों के अनुसार जिस समय भगवान् श्री ऋषभदेव को केवल ज्ञान की उपलब्धि हुई, उसी समय सम्राट् भरत की आयुधशाला में चक्ररत्न भी उत्पन्न हुआ और इसकी सूचना

---

१५७. विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः।

—योगसूत्र २।२६

१५८. उज्जाणपुरिमताले पुरी विणीआइ तत्थ णाणवरं।
चक्कुप्पया य भरहे निवेअणं चेव दुण्हंपि॥

—आवश्यक निर्युक्ति, गा० ३४२

१५९. भरहस्स य चारपुरिसा णिच्चमेव दिवसदेवसियं वट्टमाणिं णिवेदेंति, तेहिं तस्स णिवेदितं—जहा तित्थगरस्स णाणं उप्पन्नंति, आयुहघरिएणऽवि णिवेदितं, जहा—चक्करयणं उप्पन्नं। ताहे सो चिन्तेउमारद्धो, दोण्हंपि महिमा कायव्वा, कतरं पुव्वं करेमित्ति? ताहे भणति-तातंमि पूतिए, चक्कं पूयितमेव भवति चक्कस्सवि पूयणिज्जो, ताहे सव्विड्ढीए पत्थितो।

—आवश्यक चूर्णि, जिन० पृ० १८१

१६०. प्रणम्य यमकस्तत्र, भरतेशं व्यजिज्ञपत्।
दिष्ट्याऽद्य वर्धसे देवाऽनया कल्याणवार्त्तया॥
पुरे पुरिमतालाख्ये कानने शकटानने।
युगादिनाथपादानामुदपद्यत केवलम्॥
प्रणम्य शमकोप्युच्चैः स्वरमेवं व्यजिज्ञपत्।
इदानीमायुधागारे, चक्ररत्नमजायत॥

—त्रिषष्ठि १।३।५११–५१३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक साथ ही "यमक" और "शमक" दूतों के द्वारा सम्राट् भरत को मिली।

आचार्य श्री जिनसेन ने उपर्युक्त दो सूचनाओं के अतिरिक्त तृतीय पुत्र की सूचना का भी उल्लेख किया है।[१६१]

ये सारी सूचनाएँ एक साथ मिलने से भरत एक क्षण असमंजस में पड़ गये[१६२]—क्या प्रथम चक्ररत्न की अर्चना करनी चाहिए, या पुत्रोत्सव करना चाहिए? द्वितीय क्षण उन्होंने चिन्तन की चाँदनी में सोचा—इनमें से भगवान् को केवल ज्ञान उत्पन्न होना धर्म का फल है, पुत्र होना काम का फल है और देदीप्यमान चक्ररत्न का उत्पन्न होना अर्थ का फल है।[१६३] एतदर्थ मुझे प्रथम चक्ररत्न या पुत्ररत्न की नहीं, अपितु भगवान् की उपासना करनी चाहिए। क्योंकि वह सभी कल्याणों का मुख्य स्रोत है, महान् से महान् फल देने वाली है।[१६४]

---

१६१. श्रीमान् भरतराजर्षिः बुबुधे युगपत् त्रयम्।
गुरोः कैवल्यसम्भूतिं सूतिञ्च सुतचक्रयोः॥
—महापुराण, पर्व० २४, श्लो० २ पृ० ५७३

१६२. पर्याकुल इवासीच्च क्षणं तद्यौगपद्यतः।
किमत्र प्रागनुष्ठेयं सविधानमिति प्रभुः॥
—महापुराण २४।२।५७३

(ख) उत्पन्नकेवलस्तातः, इतश्चक्रमितोऽभवत्।
आदौ करोमि कस्याऽर्चामिति दध्यौ क्षणं नृपः।
—त्रिषष्ठि० १।३।५१४

१६३. तत्र धर्मफलं तीर्थं पुत्रः स्यात् कामजं फलम्।
अर्थानुबन्धिनोऽर्थस्य फलञ्चक्रं प्रभास्वरम्॥
—महापुराण २४।६।५७३

(ख) क्व विश्वाभयदस्तातः?, क्व चक्रं प्राणिघातकम्?
विमृश्येति स्वामिपूजाहेतोः स्वानादिदेश सः।
—त्रिषष्ठि १।३।५१५

१६४. कार्येषु प्राग्विधेयं तद्धर्म्यं श्रेयोनुबन्धि यत्।
महाफलञ्च तद्देवसेवा प्राथमकल्पिकी॥
—महापुराण जिन० २४।८।५७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्ररत्न या पुत्र रत्न तो इस लोक के जीवन को ही सुख प्रदान करने वाले हैं किन्तु इस लोक और परलोक दोनों में ही जीवन को सुखी बनाने वाला भगवान् का दर्शन ही है,[१६५] अतः मुझे सर्वप्रथम भगवान् श्री ऋषभदेव के दर्शन व चरण स्पर्श करना चाहिए।[१६६]

माँ मरुदेवी की मुक्ति

सम्राट् भरत भगवान् के दर्शन हेतु सपरिजन प्रस्थित हुए। माँ मरुदेवी भी अपने लाड़ले पुत्र के दर्शन हेतु चिरकाल से छटपटा रही थी, प्यारे पुत्र के वियोग से वह व्यथित थी। उसके दारुण कष्ट की कल्पना करके वह कलप रही थी। प्रतिपल-प्रतिक्षण लाड़ले लाल की स्मृति से उसके नेत्रों में आँसू बरस रहे थे।[१६७] जब उसने सुना कि उसका प्यारा लाल विनीता के बाग में आया है तो वह भी भरत के साथ हस्ती पर आरूढ़ होकर चल पड़ी। भरत के विराट् वैभव को देखकर उसने कहा—बेटा भरत! एक दिन मेरा प्यारा ऋषभ भी इसी प्रकार राज्यश्री का उपभोग करता था, पर इस समय वह क्षुधा पिपासा से पीड़ित होकर कष्टों को सहन करता हुआ विचरता है। पुत्र प्रेम से आँखें छलछला आईं। भरत के द्वारा तीर्थङ्करों की दिव्य विभूति का शब्दचित्र प्रस्तुत करने पर भी उसे सन्तोष नहीं हो रहा था।[१६८] किन्तु समवसरण के सन्निकट

---

१६५. तायम्मि पूइए चक्कं पूइअं पूअणारिहो ताओ।
इहलोइअं तु चक्कं परलोअसुहावहो ताओ।
—आवश्यक निर्युक्ति गा० ३४३

१६६. निश्चिचायेति राजेन्द्रो गुरुपूजनमादितः।
—महापुराण० २४।६।५७३

१६७. त्रिषष्ठि० पर्व० १. स० ४, पृ० १२४।२५

१६८. भगवतो य माता भणति भरहस्स रज्जविभूतिं दट्ठूणं—मम पुत्तो एवं चेव णग्गओ हिंडति। ताहे भरहो भगवतो विभूतिं वन्नेति, सा ण पत्तियति, ताहे गच्छंतेण भणिता—एहि जा ते भगवतो विभूति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहुँचते ही श्री ऋषभदेव को ज्यों ही समवसरण में इन्द्रों द्वारा अर्चित देखा त्यों ही चिन्तन का प्रवाह बदला। आर्त ध्यान से शुक्ल ध्यान में लीन हुईं। ध्यान का उत्कर्ष बढ़ा, मोह का बन्धन सर्वांशतः टूटा। वह ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय को नष्ट कर केवल ज्ञान, केवल दर्शन की धारिका बन गई[१६९] और उसी क्षण शेष कर्मों को भी नष्ट कर हस्ती पर आरूढ़ ही सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गईं।[१७०]

दरिसेमि, जदि एरिसिया ममं सहस्सभागेणवि अत्थि त्ति, ताहे हत्थिखंधेण णीति।

—आवश्यक चूर्णि–जिन० पृ० १८१

(ख) मम पुत्तस्स एरिसी रज्जसिरी आसि संपयं सो खुहापिवासापरिगओ नग्गओ, हिंडइत्ति उव्वेयं करियाइया भरहस्स तित्थगरविभूइं वन्नेंतस्मवि न पत्तिच्चियाइया, पुत्तसोगेण य से किल झामलं चक्खुं जायं रुयंतीए.....

—आवश्यक मलय० वृत्ति० पृ० २२९

१६९. भगवतो य छत्तादिच्छत्तं पेच्छंतीए चेव केवलनाणं उप्पन्नं,

—आव० चूर्णि० पृ० १८१

(ख) ततो तीए भगवओ छत्ताइच्छत्तं पासंतीए चेव केवलमुप्पण्णं—

—आव० मल० वृ० २२९

(ग) साऽपश्यत् तीर्थकृल्लक्ष्मीं सूनोरतिशयान्विताम्,
तस्यास्तद्दर्शनानन्दात् तन्मयत्वमजायत ।।
साऽऽरुह्य क्षपकश्रेणिमपूर्वकरणक्रमात् ।
क्षीणाष्टकर्मा युगपत्, केवलज्ञानमासदत् ।।

—त्रिषष्ठि० १।३।५२८–५२९

१७०. तं समयं च णं आयुं खुट्टं सिद्धा, देवेहि य से पूया कता।

—आवश्यक चूर्णि० जिन० पृ० १८१

(ख) करिस्कन्धाधिरुढैव स्वामिनी मरुदेव्यथ।
अन्तकृत्केवलित्वेन, प्रपेदे पदमव्ययम् ।।

—त्रिषष्ठि० १।३।५३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कितने ही आचार्यों का यह अभिमत है कि भगवान् के शब्द कर्णकुहरों में गिरने से उन्हें आत्मज्ञान हुआ और वे मुक्त हो गईं।[१७१] प्रस्तुत अवसर्पिणी में सर्वप्रथम केवलज्ञान श्री ऋषभदेव को हुआ और मोक्ष मरुदेवी माता को।[१७२]

आचार्य जिनसेन ने स्त्रीमुक्ति न मानने के कारण ही प्रस्तुत घटना का उल्लेख नहीं किया है।

धर्मचक्रवर्ती

जिन बनने के पश्चात् भगवान् श्री ऋषभदेव स्वयं कृतकृत्य हो चुके थे। वे चाहते तो एकान्त शान्त स्थान में अपना शेष जीवन व्यतीत करते, पर वे महापुरुष थे। उन्होंने समस्त प्राणियों की रक्षारूप दया के पवित्र उद्देश्य से प्रवचन किया।[१७३] एतदर्थ ही भगवान् श्री महावीर ने अपने अन्तिम प्रवचन में श्री ऋषभदेव को धर्म का मुख कहा है।[१७४] और ब्रह्माण्ड पुराण में भी श्री ऋषभदेव

---

१७१. अन्ने भणंति—भगवओ धम्मकहासद्दं सुणेंतीए तक्कालं च तीए खुट्टमाउयं ततो सिद्धा।

—आवश्यक मलय० वृ० २२९

१७२. मडयं मयस्स देहो तं
मरुदेवीए पढमसिद्धोत्ति।

—आवश्यक निर्युक्ति

(ख) पढमसिद्धोत्ति काऊणं खीरोदे छूढा।

—आवश्यक चूर्णि० पृ० १८१

(ग) एतस्यामवसर्पिण्यां, सिद्धोऽसौ प्रथमस्ततः।
सत्कृत्य तद्वपुः क्षीरनीरधौ निदधेऽमरैः॥

—त्रिषष्ठि० १।३।५३१

१७३ सव्वजग जीवरक्खणदयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं।

—प्रश्नव्याकरण, सम्वरद्वार।

१७४. धम्माणं कासवो मुहं।

—उत्तराध्ययन, गा० १६ अ० २५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को दस प्रकार के धर्म का प्रवर्तक माना है।[१७५] भागवतकार ने उनका अवतार ही मोक्षधर्म का उपदेश देने के लिए माना है।[१७६]

भारतीय साहित्य में फाल्गुन कृष्णा एकादशी का दिन स्वर्णाक्षरों में उट्टङ्कित है जिस दिन सर्व प्रथम भगवान् का आध्यात्मिक प्रवचन भावुक भक्तों को श्रवण करने को प्राप्त हुआ।[१७७] भगवान् ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की गम्भीर मीमांसा करते हुए मानवजीवन के लक्ष्य पर प्रकाश डालते हुए कहा—जीवन का लक्ष्य भोग नहीं, त्याग है, राग नहीं, वैराग्य है, वासना नहीं साधना है। इस प्रकार भगवान् के अध्यात्म रस से छलछलाते हुए प्रवचन को श्रवण कर सम्राट् भरत के पाँचसौ पुत्र व सातसौ पौत्रों ने तथा 'ब्राह्मी' आदि ने प्रव्रज्या ग्रहण की।[१७८]

---

१७५. इह हि इक्ष्वाकुकुलवंशोद्भवेन नाभिसुतेन मरुदेव्या नन्दनेन महादेवेन ऋषभेण दश प्रकारो धर्मः स्वयमेव चीर्णः।

—ब्रह्माण्डपुराण

१७६. तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवक्षया।

—भागवत ११।२।१६।पृ० ७११

१७७. फग्गुणबहुले इक्कारसीइ अह अट्ठमेण भत्तेण।
उप्पन्नंमि अणंते महव्वया पंच पन्नवए॥

—आवश्यक निर्युक्ति गा० ३४०

(ख) तत्थ समोसरणे भगवं सक्कादीणं धम्मं परिकहेति।

—आवश्यक चूर्णि, पृ० १८२

१७८. सह मरुदेवीइ निग्गओ, कहणं पव्वज्ज उसभसेणस्स।
बंभीमरीइदिक्खा सुन्दरिओरोह सुअदिक्खा॥
पंच य पुत्तसयाइं भरहस्स य सत्त नत्तुअसयाइं।
सयराहं पव्वइआ तम्मि कुमारा समोसरणे॥

—आवश्यक नि० गा० ३४४-३४५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्राट् भरत आदि ने श्रावक व्रत ग्रहण किये और सुन्दरी ने भी।[१७९]

महापुराणकार ने भरत के स्थान पर श्रावक का नाम 'श्रुतकीर्ति' दिया है और सुन्दरी के स्थान पर श्राविका का नाम "प्रियव्रता" दिया है।[१८०] पर श्वेताम्बर ग्रन्थों में ये नाम कहीं पर भी नहीं आये हैं। इस प्रकार श्रमण, श्रमणी, श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध तीर्थ की संस्थापना कर वे सर्वप्रथम तीर्थङ्कर बने।

श्रमणों के लिए पाँच महाव्रतों[१८१] का और गृहस्थों के लिए

(ख) तत्थ उसभसेणो णाम भरहस्स रन्नो पुत्तो सो धम्मं सोऊण पव्वइतो, तेण तिहिं पुच्छाहिं चोद्दसपुव्वाइं गहिताइं—उप्पन्ने विगते धुते, तत्थ बम्भीवि पव्वइया।

—आवश्यक चूर्णि पृ० १८२

(ग) महापुराण पर्व० २४, श्लोक १७५, पृ० ५६१

१७९. (क) भरहो सावओ, सुन्दरीए ण दिन्नं पव्वइउं, मम इत्थिरयणं एसत्ति, सा साविगा, एस चउव्विहो समणसंघो।

—आवश्यक चूर्णि पृ० १८२

(ख) भरहो सावगो जाओ, सुन्दरी पव्वयन्ती भरहेण इत्थीरयणं भविस्सइत्ति निरुद्धा साविया जाया, एस चउव्विहो समणसंघो।

—आवश्यक मल० वृ० प० २२६

१८०. श्रुतकीर्तिर्महाप्राज्ञो गृहीतोपासकव्रतः।
देशसंयमिनामासीद्धौरेयो गृहमेधिनाम्॥
उपात्ताणुव्रता धीरा प्रयतात्मा प्रियव्रता।
स्त्रीणां विशुद्धवृत्तीनां बभूवाग्रेसरी सती॥

—महापुराण जिनसेन २४।१७७–१७८ पृ० ५६२

१८१. अहिंससच्चं च अतेणगं च,
ततो य बम्भं च अपरिग्गहं च।
पडिवज्जिया पंच महव्वयाइं,
चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विऊ॥

—उत्तराध्ययन २१।२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वादश व्रतों का निरूपण किया।[१८२] मर्यादित विरति अणुव्रत और पूर्ण विरति महाव्रत है।[१८३]

भगवान् के प्रथम गणधर ऋषभसेन हुए।[१८४] श्वेताम्बर ग्रन्थों के अनुसार वे सम्राट् भरत के पुत्र थे[१८५] और दिगम्बर ग्रन्थों के अनुसार वे भगवान् श्री ऋषभदेव के पुत्र थे।[१८६] श्री समयसुन्दर जी

(ख) आवश्यक निर्युक्ति गा० ३४० ।

१८२. देखिए उपासक दशांग में द्वादश व्रतों का निरूपण ।

(ख) तत्त्वार्थ सूत्र में भी ।

१८३. एभ्यो हिंसादिभ्य एकदेशविरतिरणुव्रतं, सर्वतो विरतिर्महाव्रतमिति ।

—तत्त्वार्थ ७।२ भाष्य

१८४. उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स उसभसेणपामोक्खाओ चउरासीइं समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था ।

—कल्पसूत्र, सू० १९७ पृ० ५८ पुण्य०

(ख) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति

(ग) समवायाङ्ग १५७ गा० ३९–४१

(घ) त्रिषष्ठि० १।३

(ङ) तेषु ऋषभसेनाद्याश्चतुरशीतिर्गणधराः स्थापिताः

—कल्पार्थबोधनी पृ० १५१

(च) कल्पसुबोधिका विनय० पृ० ५१२

१८५. तत्थ उसभसेणो नाम भरहपुत्तो पुव्वभवबद्धगणहरनामगुत्तो जायसंवेगो पव्वइओ ।

—आवश्यक मल० वृ०–पृ० २२९

१८६. योऽसौ पुरिमतालेशो भरतस्यानुजः कृती ।
प्राज्ञः शूरः शुचिर्धीरो, धौरेयो मानशालिनाम् ।।
श्रीमान् वृषभसेनाख्यः प्रज्ञापारमितो वशी ।
स सम्बुध्य गुरोः पार्श्वे दीक्षित्वाभूद गणाधिपः ।।

—महापुराण २४।१७१–१७२ पृ० ५९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने कल्पलता[१८७] में और लक्ष्मीवल्लभ जी ने कल्पद्रुम कलिका[१८८] में ऋषभसेन के स्थान पर पुण्डरीक नाम दिया है किन्तु जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, समवायाङ्ग, कल्पसूत्र, आवश्यक मलयगिरीय वृत्ति, त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित्र प्रभृति ग्रन्थों में प्रथम गणधर का नाम पुण्डरीक नहीं, ऋषभसेन ही दिया है।[१८९] यहाँ तक कि समयसुन्दर जी व लक्ष्मीवल्लभ जी ने भी कल्पसूत्र के मूल में ऋषभसेन नाम ही रक्खा है। हमारी दृष्टि से भगवान् श्री ऋषभदेव के चौरासी गणधर थे उनमें से एक गणधर का नाम पुण्डरीक था, जो भगवान् के परिनिर्वाण के पश्चात् भी संघ का कुशल नेतृत्व करते रहे थे। सम्भव है इसी कारण समयसुन्दर जी व लक्ष्मीवल्लभ जी को भ्रम हो गया और उन्होंने टीकाओं में ऋषभसेन के स्थान पर पुण्डरीक नाम दिया, जो अनागमिक है।

उत्तराधिकारी

हाँ, तो प्रथम गणधर ऋषभसेन को ही भगवान् ने आत्म-विद्या का परिज्ञान कराया। वैदिक परम्परा से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि आत्म-विद्या क्षत्रियों के अधीन रही है। पुराणों की दृष्टि से भी क्षत्रियों के पूर्वज भगवान् श्री ऋषभदेव ही हैं।[१९०]

---

१८७. तेषां मध्यात् पुण्डरीकादयः चतुरशीतिगणधरा जाताः
—कल्पलता–पृ० २०७

१८८. तत्र पुण्डरीकः प्रथमो गणभृत् स्थापितः
—कल्पद्रुम कलिका पृ० १५१

१८९. देखिए १८४ नं० का टिप्पण

१९०. ऋषभं पार्थिव—श्रेष्ठं सर्व-क्षत्रस्य पूर्वजम्।
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्र-शताग्रजः॥
—ब्रह्माण्ड पुराण, पूर्वार्ध छनुषंगपाद अध्या० १४ श्लो० ६०

(ख) नाभिस्त्वजनयत्पुत्रं मरुदेव्यां महाद्युतिः।
ऋषभं पार्थिव-श्रेष्ठं सर्व-क्षत्रस्य पूर्वजम्॥
—वायुमहापुराण, पूर्वार्ध अध्या० ३३, श्लो० ५०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वे मोक्षमार्ग के प्रवर्तक अवतार हैं।[१९१] जैन साहित्य में जिस ऋषभसेन को ज्येष्ठ गणधर कहा है, सम्भव है, वैदिक साहित्य में उसे ही मानसपुत्र और ज्येष्ठपुत्र अथर्वन कहा हो। उन्हें ही भगवान् ने समस्त विद्याओं में प्रधान ब्रह्मविद्या देकर लोक में अपना उत्तराधिकारी बनाया है।[१९२]

आद्य परिव्राजक : मरीचि

भगवान् के केवल ज्ञान की तथा तीर्थ-प्रवर्तन की सूचना प्राप्त होते ही, भगवान् के साथ जिन चार सहस्र व्यक्तियों ने प्रव्रज्या ग्रहण की थी और जो क्षुधा पिपासा से पीड़ित होकर तापस आदि हो गये थे, उन तापसों में से कच्छ महाकच्छ को छोड़कर सभी भगवान् के पास आते हैं और आर्हती प्रव्रज्या ग्रहण करते हैं।[१९३]

---

१९१. तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवक्षया ।
अवतीर्णं सुतशतं तस्यासीद् ब्रह्मपारगम् ॥

—श्रीमद्भागवत ११।२।१६ गीता प्रेस० गो० प्र० संस्करण

१९२. ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ।

—मुण्डकोपनिषद् १।१

(ख) स्वर्ततिनयाय गातं विदद ।

—ऋग्वेद १, ६९, ४

१९३. ते य तापसा भगवओ नाणमुप्पणं ति कच्छसुकच्छवज्जा भगवओ सगासमागंतूण भवणवतिवाणमंतरजोइसियवेमाणियदेवाण्गिणं परिसं दट्ठूण भगवओ सगासे पव्वइया ।

—आव० नि० मल० वृ० पृ० २३०।१

(ख) ते च कच्छमहाकच्छवर्जं राजन्यतापसाः ।
आगत्य स्वामिनः पार्श्वे, दीक्षामाददिरे मुदा ॥

त्रिषष्टि १।३।६५४ पृ० ८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यकनिर्युक्ति,[१९४] आवश्यक चूर्णि, आवश्यक मलयगिरीय वृत्ति,[१९५] आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति[१९६] त्रिषष्ठिशलाका पुरुष-चरित्र,[१९७] कल्पलता,[१९८] कल्पद्रुम कलिका,[१९९] महावीरचरिय[२००] प्रभृति श्वेताम्बर ग्रन्थों के अनुसार भगवान् के प्रथम प्रवचन को श्रवण कर सम्राट् भरत का पुत्र मरीचि भगवान् ऋषभदेव के पास दीक्षित होता

(ग) येऽपि च तापसाः कच्छ-
महाकच्छविवर्जिताः ।
तेऽपि प्रपेदिरे दीक्षां
समेत्य स्वामिनोऽन्तिके ।।

—कल्पार्थ-बोधिनी पृ० १५१

१९४. दट्ठूण कीरमाणिं महिमं देवेहिं खत्तिओ मरिई ।
सम्मत्तलद्धबुद्धी धम्मं सोऊण पव्वइओ ।।

—आव० नि० गा० ३४७

१९५. एत्थ समोसरणे मरिचिमाइया बहवे कुमारा पव्वइया,

—आवश्यक मल० वृ० पृ० २३०।१

१९६. आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति

१९७. आद्ये समवसरणे ऋषभस्वामिनः प्रभो ।
पितृभ्रात्रादिभिः सार्धं मरीचिः क्षत्रियो ययौ ।।
महिमानं प्रभोःप्रेक्ष्य क्रियमाणं स नाकिभिः ।
धर्मं चाकर्ण्य सम्यक्त्वलधधीर्व्रतमाददे ।।

—त्रिषष्ठि० १०।१।२२-२३

१९८. तत्र भरतस्य मरीचिप्रमुखाः पञ्चशतपुत्राः
सप्तशतपौत्राश्च प्रतिबुद्धाः दीक्षां जगृहुः ।

—कल्पलता—पृ० २०७

१९९. तत्र प्रथमदेशनायां धर्मं श्रुत्वा पञ्चशतं भरतस्य पुत्राः, सप्तशतं भरतस्य पौत्राः प्रतिबोधं प्रापुः, द्वादशशतकुमारैर्दीक्षा गृहीता·····
द्वादशशतकुमारेषु मरीचिरपि दीक्षित आसीत् ।

—कल्पद्रुम कलिका—पृ० १५१

२००. पियामहस्स पासे पव्वइओत्ति ।

—महावीर चरियं, गुणचन्द्राचार्य पत्र ११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, तप संयम की विशुद्ध आराधना-साधना करता हुआ[२०१] एकादश अङ्गों का अध्ययन करता है।[२०२] पर एक बार वह भीष्म-ग्रीष्म के आतप से प्रताड़ित होकर साधना के कठोर कंटकाकीर्ण महामार्ग से विचलित हो जाता है।[२०३] उसके अन्तर्मानस में ये विचार-लहरियाँ तरंगित होती हैं कि मेरुपर्वत सदृश यह संयम का महान् भार मैं एक मुहूर्त भी सहन करने में असमर्थ हूँ।[२०४] क्या मुझे पुनः गृहस्थाश्रम स्वीकार करना चाहिए? नहीं, कदापि नहीं। और मैं संयम का भी विशुद्धता से पालन नहीं कर पाता, अतः मुझे नवीन वेषभूषा का निर्माण करना चाहिए।[२०५]

श्रमणसंस्कृति के श्रमण त्रिदण्ड-मन वचन काय के अशुभ व्यापारों से रहित होते हैं, इन्द्रियविजेता होते हैं, पर तो मैं त्रिदण्ड से युक्त हूँ, और अजितेन्द्रिय हूँ, अतः इसके प्रतीक रूप त्रिदण्ड को धारण करूँगा।[२०६]

---

२०१. मरिईवि सामिपासे विहरइ तवसंजमसमग्गो।
—आवश्यक भाष्य, गा० ३६

२०२. सामाइअमाईअं इक्कारसमा उ जाव अंगाओ।
उज्जुत्तो भत्तिगओ अहिज्जिओ सो गुरुसगासे॥
—आवश्यक भाष्य० गा० ३७

२०३. अह अन्नया कयाइ गिम्हे उण्हेण परिगयसरीरो।
अण्हाणएण चइओ इमं कुलिंगं विचिंतेइ॥
—आव० नि० गा० ३५० मल० वृ० प० २३३।१

२०४. मेरुगिरीसमभारे न हुवि समत्थो मुहुत्तमवि वोढुं।
सामन्नए गुणे गुणरहिओ संसारमणुकंखी॥
—आव० नि० गा० ३५१ म० वृ० २३३।१

२०५. एवमणुचिंतयंतस्स तस्स निअगा मई समुप्पन्ना।
लद्धो मए उवाओ जाया मे सासया बुद्धी॥
—आव० नि० गा० ३५२

२०६. समणा तिदंडविरया भगवंतो निहुअसंकुइअअंगा।
अजिइंदिअदंडस्स उ होउ तिदंडं मह चिंधं॥
—आव० नि० गा० ३५३ मल० प० २३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण द्रव्य और भाव से मुण्डित होते हैं, सर्व प्राणातिपात-विरमण महाव्रत के धारक होते हैं, पर मैं शिखासहित क्षुरमुण्डन कराऊँगा और स्थूलप्राणातिपात का विरमण करूँगा।[२०७]

श्रमण अकिंचन तथा शील की सौरभ से सुरभित होते हैं, पर मैं परिग्रहधारी रहूँगा और शील की सौरभ के अभाव में चन्दनादि की सुगन्ध से सुगन्धित रहूँगा।[२०८]

श्रमण निर्मोह होते हैं, पर मैं मोह ममता के मरुस्थल में घूम रहा हूँ, उसके प्रतीक के रूप में छत्र धारण करूँगा। श्रमण नंगे पैर होते हैं, पर मैं उपानद् पहनूँगा।[२०९]

श्रमण जो स्थविर कल्पी हैं वे श्वेतवस्त्र के धारक हैं और जिन-कल्पी निर्वस्त्र होते हैं, पर मैं कषाय से कलुषित हूँ, अतः काषाय वस्त्र धारण करूँगा।[२१०]

(ख) त्रिषष्ठि० १।६।१५ प० १५०

२०७. लोइंदियमुंडा संजया उ अहय खुरेण ससिहो अ।
थूलगपाणिवहाओ, वेरमणं मे सया होउ ॥
—आव० नि० गा० ३५४ म० वृ० २३३।

(ख) अमी मुण्डाः शिरःकेशलुञ्चनेन्द्रियनिर्जयैः।
अहं पुनर्भविष्यामि क्षुरमुण्डशिखाधरः ॥
त्रिषष्टि० १।६।१६। प० १५०

२०८. निक्किंचणा य समणा अकिंचणा मज्झ किंचणं होउ।
सीलसुगंधा समणा अहयं सीलेण दुग्गंधो ॥
—आव० निर्युक्ति० गा० ३५५

(ख) त्रिषष्टि० १।६।१६।१५०।१

२०९. ववगयमोहा समणा मोहाच्छन्नस्स छत्तयं होउ।
अणुवाणहा य समणा मज्झं तु उवाहणे हुंतु ॥
—आव० निर्युक्ति० गा० ३५६

(ख) त्रिषष्टि० १।६।२०।१५०।१

२१०. सुक्कंबरा य समणा निरंबरा मज्झ धाउरत्ताइं।
हुंतु इमे वत्थाइं, अरिहो मि कसायकलुसमई ॥
—आवश्यक निर्युक्ति० गा० ३५७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण पापभीरु और जीवों की घात करने वाले आरंभादि से मुक्त होते हैं। वे सचित्त जल का प्रयोग नहीं करते हैं। पर मैं वैसा नहीं हूँ, अतः स्नान तथा पीने के लिए परिमित जल ग्रहण करूँगा।[२११]

इस प्रकार उसने अपनी कल्पना से परिकल्पित परिव्राजक-परिधान का निर्माण किया[२१२] और भगवान् के साथ ही ग्राम नगर आदि में विचरने लगा।[२१३] भगवान् के श्रमणों से मरीचि की पृथक् वेश-भूषा को निहारकर जन-जन के अन्तर्मानस में कुतूहल उत्पन्न होता। लोग जिज्ञासु बनकर उसके पास पहुँचते।[२१४] मरीचि अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा की तेजस्विता से प्रतिबोध देकर उन्हें भगवान् के शिष्य बनाता[२१५]

एक समय सम्राट् भरत ने भगवान् श्री ऋषभदेव के समक्ष

(ख) त्रिषष्ठि० १।६।२१।१५०।१

२११. वज्जंतऽवज्जभीरू, बहुजीवसमाउलं जलारंभं।
होउ मम परिमिएणं, जलेण ण्हाणं च पिअणं च ॥
—आवश्यक नि० गा० ३५८

(ख) त्रिषष्टि० १।६।२२।१५०।१।

२१२. एवं सो रुइयमई निअगमइविगप्पिअं इमं लिंगं।
—आव० नि० गा० ३५६

(ख) स्वबुद्धया कल्पयित्वैवं मरीचिर्लिङ्गमात्मनः।
—त्रिषष्ठि १।६।२३।१५१।१

२१३. गामनगरागराई, विहरइ सो सामिणा सद्धिं।
—आवश्यक निर्युक्ति ३६० प० २३४

२१४. अह तं पागडरूवं दट्ठुं पुच्छेइ बहुजणो धम्मं।
कहइ जईणं तो सो विआलणे तस्स परिकहणा ॥
—आवश्यक निर्युक्ति गा० ३८८

२१५. धम्मकहाअक्खित्ते उवट्ठिए देइ भगवओ सीसे।
—आवश्यक निर्युक्ति ३६०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा प्रस्तुत की—कि प्रभो ! क्या इस परिषद् में ऐसा कोई व्यक्ति है जो आपके सदृश ही भरत क्षेत्र में तीर्थंकर बनेगा ?[२१६]

जिज्ञासा का समाधान करते हुए भगवान् ने कहा—स्वाध्याय ध्यान से आत्मा को ध्याता हुआ तुम्हारा पुत्र मरीचि परिव्राजक "वीर" नामक अन्तिम तीर्थङ्कर बनेगा। उससे पूर्व वह पोतनपुर का अधिपति त्रिपृष्ठ वासुदेव होगा, तथा विदेह क्षेत्र की मूका नगरी में प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती होगा। इस प्रकार तीन विशिष्ट उपाधियों को वह अकेला ही प्राप्त करेगा।[२१७]

---

२१६. पुणरवि अ समोसरणे, पुच्छीअ जिणं तु चक्किणो भरहे।
अप्पुट्ठो अ दसारे तित्थयरो को इहं भरहे ?॥
—आवश्यक निर्युक्ति० गा० ३६७

(ख) अह भणइ नरवरिंदो ताय ! इमीसित्तिआइ परिसाए।
अन्नोऽवि कोऽवि होही भरहे वासम्मि तित्थयरो ?
—आवश्यक मूलभाष्य गा० ४४ मल० वृ० पृ० २४३

(ग) भगवं ! किमेत्थ कोऽवि हु पाविस्सइ तित्थयरलाभं ?
—महावीर चरियं, गुणचन्द्र, गा० १२४ प्र० २ प० १८

२१७. तत्थ मरीई नामा आइपरिव्वायगो उसभनत्ता।
सज्झायज्झाणजुओ एगंते झायइ महप्पा॥
तं दाएइ जिणिन्दो एव नरिंदेण पुच्छिओ सन्तो।
धम्मवरचक्कवट्टी अपच्छिमो वीरनामुत्ति॥
तथा—आइगरु दसाराणं तिविट्ठु नामेण पोअणाहिवई।
पियमित्तचक्कवट्टी मूआइ विदेहवासम्मि॥
—आवश्यक नि० गा० ४२२ से ४२४ प० २४४

(ख) ताहे कलियकुलिगं मिरिइं एगंतसंठियं भयवं।
दावइ जह एस जिणो चरिमो होही तुह सुओत्ति॥
एसोच्चिय गामागरनगरसमिद्धस्स भारहद्धस्स।
सामी तिविट्ठुनामो पढमो तह वासुदेवाणं॥
एसो महाविदेहे पियमित्तो नाम चक्कवट्टीवि।
मूयाए नयरीए भविस्सई परमरिद्धिजुओ।
—महावीर चरियं, गा० १२६ से १२८ प० १८।१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् श्री ऋषवदेव की भविष्य वाणी को श्रवण कर सम्राट् भरत भगवान् को वन्दन कर मरीचि परिव्राजक के पास पहुँचे, और भगवान् की भविष्यवाणी को सुनाते हुए उससे कहा--अयि मरीचि परिव्राजक ! तुम अन्तिम तीर्थङ्कर बनोगे, अतः मैं तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ।[२१८] तुम वासुदेव व चक्रवर्ती भी बनोगे।"

यह सुनकर मरीचि के हृत्तंत्री के तार झनझना उठे—मैं वासुदेव, चक्रवर्ती और तीर्थङ्कर बनूँगा।[२१९] मेरे पिता चक्रवर्ती हैं, मेरे पितामह तीर्थङ्कर हैं और मैं अकेला ही तीन पदवियों को धारण करूँगा![२२०] मेरा कुल कितना उत्तम है !

एक दिन मरीचि का स्वास्थ्य बिगड़ गया। सेवा करने वाले के अभाव में मरीचि के मानस में ये विचार उद्‌बुद्ध हुए कि मैंने अनेकों को उपदेश देकर भगवान् के शिष्य बनाये, पर आज मैं स्वयं सेवा करने वाले से वंचित हूँ। अब स्वस्थ होने पर मैं स्वयं अपना शिष्य

(ग) त्रिषष्ठि १।६।३७२ से ३७८ पृ० १६२।

२१८. नावि अ ते पारिवज्जं वंदामि अहं इमं च ते जम्मं।
जं होहिसि तित्थयरो अपच्छिमो तेण वंदामि॥

—आव० नि० गा० ४२८ प० २४४

(ख) महावीर चरियं गा० १२९ से १३६ प० १९।

२१९. जइ वासुदेव पढमो मूआइ विदेह चक्कवट्टित्तं।
चरिमो तित्थयराणं होउ अलं इत्तिअं मज्झ॥

—आव० नि० गा० ४३१ प० २४५

२२०. अहयं च दसाराणं पिया मे चक्कवट्टिवंसस्स।
अज्जो तित्थयराणं अहो कुलं उत्तमं मज्झ॥

—आव० नि० गा० ४३२।२४५

(ख) यद्याद्यो वासुदेवानां विदेहेषु च चक्रभृत्।
अन्त्योऽर्हन् भवितास्मीति पूर्णमेतावता मम॥
पितामहोऽर्हतामाद्यश्चक्रिणां च पिता मम।
दशार्हाणामहं चेति श्रेष्ठं कुलमहो मम॥

—त्रिषष्ठि० १।६।३८६-३८७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बनाऊँगा।[२२१] वह स्वस्थ हुआ। कपिल राजकुमार धर्म की जिज्ञासा से उसके पास आया। उसने आर्हती दीक्षा की प्रेरणा दी। कपिल ने प्रश्न किया "आप स्वयं आर्हत धर्म का पालन क्यों नहीं करते?" उत्तर में मरीचि ने कहा—"मैं उसे पालन करने में समर्थ नहीं हूँ।" कपिल ने पुनः प्रश्न किया—क्या आप जिस मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं उसमें धर्म नहीं है?" इस प्रश्न ने मरीचि के मानस में तूफान पैदा कर दिया और उसने कहा—"यहाँ पर भी वही है जो जिन धर्म में है।"[२२२] कपिल उसी का शिष्य बना।

---

२२१. अन्यदा स ग्लानः संवृत्तः साधवोऽप्यसंयतत्त्वान्न प्रतिजाग्रति। स चिन्तयति—निष्ठितार्थाः खल्वेते, नासंयतस्य कुर्वन्ति, नापि ममैतान् कारयितुं युज्यते, तस्मात्कंचन प्रतिजागरकं दीक्षयामीति।
—आव० मल० वृ० प० २४७।१

(ख) त्रिषष्ठि १।६।२९-३२ पृ० १५०।

(ग) महावीर चरियं, गुण० ६।२९-३२

२२२. अपगतरोगस्य च कपिलो नाम राजपुत्रो धर्म्मशुश्रूषया तदन्तिकमागत इति, कथिते साधुधर्म्मे स आह—यद्ययं मार्गः किमिति भवतैतदङ्गीकृतं? मरीचिराह—पापोऽहं "लोए इंदिये" त्यादि विभाषा पूर्ववत्, कपिलोऽपि कर्मोदयात् साधुधर्म्मानभिमुखः खल्वाह—तथापि किं भवद्दर्शने नास्त्येव धर्म्म इति? मरीचिरपि प्रचुरकर्म्मा खल्वयं न तीर्थकरोक्तं प्रतिपद्यते, वरं मे सहायः संवृत्त इति सञ्चिन्त्याह—'कपिला एत्थं पि' त्ति....।
—आवश्यक निर्युक्ति मलय० वृ० प० २४७।१

(ख) मरीचिमाययौ भूयः स इत्यूचे च किं तव?
योऽपि सोऽपि न धर्मोऽस्ति, निर्धर्मं किं व्रतं भवेत्?
—त्रिषष्ठि० १।६।४८

(ग) कविलेण वुत्तं—भयवं! तुम्ह संतिए एत्थ तहावि अत्थि किं पि णिज्जराठाणं न वा! मिरिइणा भणियं—भद्द! समणधम्मे ताव अत्थि, इहावि मणागं ति।
—महावीर चरियं० गुण० प० २२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिगम्बराचार्य जिनसेन और आचार्य सकलकीर्ति के मन्तव्यानुसार जिन चार सहस्र राजाओं ने भगवान् के साथ दीक्षा ग्रहण की थी, उनके साथ ही मरीचि ने भी दीक्षा ली थी।[२२३] और वह भी उन राजाओं के समान ही क्षुधा-पिपासा से व्याकुल होकर परिव्राजक हो गया था।[२२४] मरीचि के अतिरिक्त सभी परिव्राजकों के आराध्यदेव श्री ऋषभदेव ही थे।[२२५] भगवान् को केवल ज्ञान होने पर मरीचि को को छोड़कर अन्य सभी भ्रष्ट बने हुए साधक तत्त्वों का यथार्थ स्वरूप समझकर पुनः दीक्षित बने।[२२६]

जैन साहित्य की दृष्टि से मरीचि 'आदि परिव्राजक' था।[२२७]

(घ) गेलन्नेऽपडियरणं कविला ! इत्थंपि इहयंपि ।
—आवश्यक नि० गा० ४३७

२२३. (क) स्वपितामहसन्त्यागे स्वयञ्च गुरुभक्तितः ।
राजभिः सह कच्छाद्यैः परित्यक्तपरिग्रहः ।।
—उत्तरपुराण, श्लो० ७२ स० ५४, पृ० ४४६

(ख) महावीर पुराण—आचार्य सकल कीर्ति पृ० ६ ।

२२४. मरीचिश्च गुरोर्नप्ता, परिव्राड्भूयमास्थितः ।
मिथ्यात्ववृद्धिमकरोद् अपसिद्धान्तभाषितैः ।।
—महापुराण जिन० प० १८, श्लो० ६१ पृ० ४०३

२२५. न देवतान्तरं तेषाम् आसीन्मुक्त्वा स्वयंभुवम् ।
—महा० जिन० १८।६०।४०२

२२६. मरीचिवर्ज्याः सर्वेपि तापसास्तपसि स्थिताः ।
भट्टारकान्ते सम्बुद्ध्य महाप्राव्राज्यमास्थिताः ।।
—महापुराण जिन० २४।१८२।५६२

२२७. शशंस भगवानेवं, य एष तव नन्दनः ।
मरीचिर्नामधेयेन परिव्राजक आदिमः ।।
—त्रिषष्ठि० १।६।३७३

(ख) अदीक्षयत् स कपिलं, स्वसहायं चकार च ।
परिव्राजकपाखण्डं, ततः प्रभृति चाऽभवत् ।।
—त्रिषष्ठि० १।६।५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कपिल जैसे शिष्य को प्राप्तकर उसका उत्साह बढ़ गया। उसने तथा उसके शिष्य कपिल ने योगशास्त्र और सांख्य शास्त्र का प्रवर्तन किया।[२२८]

मरीचि और कपिल का वर्णन जैसा जैन साहित्य में उट्टङ्कित है वैसा भागवत आदि वैदिक साहित्य में नहीं। जहाँ जैन साहित्य में मरीचि को भरत का पुत्र माना है वहाँ भागवतकार ने भरत की वंश परम्परा का वर्णन करते हुए उसे अनेक पीढ़ियों के पश्चात् "सम्राट्" का पुत्र बताया है तथा उसकी माँ का नाम "उत्कला" दिया है।[२२९]

जैन साहित्य में कपिल को राजपुत्र बताया है और वैदिक साहित्य में उसे कर्दम ऋषि का पुत्र बताया है। साथ ही उन्हें विष्णु का पाँचवाँ अवतार भी माना है।[२३०]

जब कपिल कर्दम ऋषि के यहाँ जन्म ग्रहण करता है तब ब्रह्मा जी मरीचि आदि मुनियों के साथ कर्दम के आश्रम में

---

२२८. (क) स प्राग्जन्मावधेर्ज्ञात्वा, मोहादभ्येत्य भूतले।
स्वयं कृतं सांख्यमतमामूर्यादीनबोधयत्॥
तदाम्नायादत्र सांख्यं प्रावर्तत च दर्शनम्।
सुखसाध्ये ह्यनुष्ठाने प्रायो लोकः प्रवर्तते॥
त्रिषष्ठि० १०।१।७३-७४

(ख) तदुपज्ञमभूद् योगशास्त्रं तन्त्रं च कापिलम्।
येनायं मोहितो लोकः सम्यग्ज्ञानपराङ्मुखः॥
—महापुराण १८।६२।४०३

२२९. ततः उत्कलायां मरीचिर्मरीचेर्विन्दु.....।
—भागवत ५।१५।१५।६०६

२३०. पंचमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम्।
प्रोवाचासुरये सांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम्॥
—भागवत स्कन्ध १, अं० अ० श्लो० १० पृ० ५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहुँचते है[२३१] और यह प्रेरणा देते हैं कि वे अपनी कन्याएँ मरीचि आदि मुनियों को समर्पित करें।[२३२] ब्रह्मा की प्रेरणा से कर्दम ऋषि ने 'कला' नामक कन्या का मरीचि के साथ पाणिग्रहण करवाया।[२३३] इस प्रकार स्पष्ट है कि मरीचि कपिल के बहनोई थे। पर प्रश्न है कि भागवतकार ने एक ओर ऋषभ को आठवाँ अवतार माना है और कपिल को पाँचवाँ और कपिल तथा मरीचि का समय एक ही बताया गया है। श्रीमद्भागवत की दृष्टि से मरीचि भरत की अनेक पीढ़ियों के बाद आते हैं तो पूर्व में होने वाले को आठवाँ अवतार और पश्चात् होने वाले को पाँचवाँ अवतार कैसे माना गया ?

हमारी दृष्टि से भागवत में अवतारों का जो निरूपण किया गया है, वह न क्रमबद्ध है और न संगत ही है।

जैन-साहित्य में मरीचि परिव्राजक के आचारशैथिल्य का वर्णन तो है, पर भागवत की तरह उनके विवाह का उल्लेख नहीं है।

वैदिक साहित्य के परिशीलन से यह भी ज्ञात होता है कि मरीचि श्री ऋषभ के अनुयायी थे। ऋग्वेद[२३४] में काश्यपगोत्री

---

२३१. तत्कर्दमाश्रमपदं सरस्वत्या परिश्रितम्।
स्वयम्भूः साकमृषिभिर्मरीच्यादिभिरभ्ययात्॥
श्रीमद्भागवत स्कंध ३, अ० २४, श्लो० ९ पृ० ३१५

२३२. अतस्त्वमृषिमुख्येभ्यो यथाशीलं यथारुचि।
आत्मजाः परिदेह्यद्य विस्तृणीहि यशो भुवि॥
—भागवत ३।२४।१५।३१६

२३३. गते शतधृतौ क्षत्तः कर्दमस्तेन चोदितः।
यथोदितं स्वदुहितः प्रादाद्विश्वसृजां ततः॥
मरीचये कलां प्रादादनसूयामथात्रये।
श्रद्धामङ्गिरसेऽयच्छत्पुलस्त्याय हविर्भुवम्॥
—भागवत ३।२४।२१–२२।३१७

२३४. ऋग्वेद १।९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मरीचिपुत्र ने अग्निदेव के प्रतीक के रूप में जो ऋषभदेव की स्तुति की है वह हमारे मन्तव्यानुसार वही मरीचि हैं जिनका प्रस्तुत इतिवृत्त से सम्बन्ध है।

सुन्दरी का संयम

भगवान् श्री ऋषभ के प्रथम प्रवचन को श्रवण कर ही सुन्दरी संयम ग्रहण करना चाहती थी। उसने यह भव्य-भावना अभिव्यक्त भी की थी किन्तु सम्राट् भरत के द्वारा आज्ञा प्राप्त न होने से वह श्राविका बनी।[२३५] परन्तु उसके अन्तर्मानस में वैराग्य का पयोधि उछालें मार रहा था, वह तन से गृहस्थाश्रम में थी किन्तु उसका मन संयम में रम रहा था। षट् खण्ड पर विजय वैजयन्ती फहराकर और सम्पूर्ण भारतवर्ष को एक अखण्ड शासन प्रदान कर जब सम्राट् भरत दीर्घकाल के पश्चात् "विनीता" लौटे तब सुन्दरी के कृश तनु को देखकर वे चकित रह गये।[२३६]

---

२३५. सुन्दरी पव्वयंती भरहेण इत्थीरयणं भविस्सइत्ति निरुद्धा साविया जाया।

—आवश्यक मलयगिराय वृत्ति, पृ० २२९

(ख) विमुक्ता बाहुबलिना, जिघृक्षुः सुन्दरी व्रतम्।
भरतेन निषिद्धा तु, श्राविका प्रथमाऽभवत्॥

—त्रिषष्ठि० प० १। स० ३। प० ६५१

(ग) कल्प सुबोधिका टीका पृ० ५१२, सारा० न०।

(घ) कल्पलता—समय सुन्दर पृ० २०७।

(ङ) कल्पद्रुम कलिका पृ० १५१।

२३६. एवं जाहे बारस वरिसाणि महारायाभिसेगो वत्तो, रायाणो विसज्जिता ताहे णियगवग्गं सारिउमारद्धो, ताहे दाइज्जंति सव्वे णियलग्गा एवं पडिवाडिए सुन्दरी दाइता, सा पंडुल्लुइतमुही, सा य जद्दिवसं रुद्धा चेव तद्दिवसमारद्धा चेव आयंबिलाणि करेति, तं पासित्ता रुट्ठो ते कोडुंबिये भणति.....।

—आवश्यक चूर्णि, पृ० २०९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुचरों को फटकारते हुए उन्होंने कहा—ज्ञात होता है कि मेरे जाने के पश्चात् तुम लोगों ने सुन्दरी की कोई सुध-बुध नहीं ली है। क्या मेरे भोजनालय में भोजन की कमी है, क्या वैद्य और औषधियों का अभाव है ?[२३७]

अनुचरों ने नम्र निवेदन करते हुए कहा—नाथ ! न भोजन की कमी है और न चिकित्सकों का ही अभाव है, किन्तु जिस दिन से आपने सुन्दरी को संयम लेने का निषेध किया उसी दिन से ये निरन्तर आचाम्लव्रत कर रही हैं। हमारे द्वारा अनेक बार अभ्यर्थना करने पर भी ये प्रतिज्ञा से विचलित नहीं हुई हैं।[२३८]

(ख) षष्टिं वर्षसहस्राणि, विरहाद् दर्शनोत्सुकान् ।
अदर्शयन् निजान् राज्ञो, नियुक्तपुरुषास्ततः ।।
ततः कृशां ग्रीष्मकालाक्रान्तामिव तरङ्गिणीम् ।
म्लानां हिमानीसम्पर्कवशादिव सरोजिनीम् ।।
प्रनष्टरूपलावण्यां, हैमनेन्दुकलामिव ।
पाण्डुक्षामकपोलां च रम्भां शुष्कदलामिव ।।
सोदरां बाहुबलिनः सुन्दरीं गुणसुन्दरः ।
नामग्राहं स्वपुरुषैर्दर्श्यमानां ददर्श सः ।।
तथाविधां च सम्प्रेक्ष्य तां परावर्त्तितामिव ।
सकोपमवनीपालः, स्वायुक्तानित्यवोचत ।।

—त्रिषष्ठि १।४।७३० से ७३४

(ग) भारहं वासं अभिजिणिऊण अतिगओ विणीयं रायहाणिति,·····
एवं परिवाडीए सुन्दरी दाइया, सा पण्डुल्लुगितमुही जाया ।

—आवश्यक मलयगिरीय पृ० २३१।१

२३७. किं मम णत्थि जं एसा एरिसी रूवेणं जाता ? वेज्जा वा नत्थि ?

— आवश्यक चूर्णि, पृ० २०९

२३८. किन्तु देवो यदाद्यगाद्, दिग्जयाय तदाद्यसौ ।
आचामाम्लानि कुरुते, प्राणत्राणाय केवलम् ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्राट् भरत ने सुन्दरी से पूछा—सुन्दरी तुम संयम लेना चाहती हो या गृहस्थाश्रम में रहना चाहती हो ? सुन्दरी ने संयम की भावना अभिव्यक्त की। सम्राट् भरत की आज्ञा से सुन्दरी ने श्री ऋषभदेव की आज्ञानुवर्तिनी ब्राह्मी के पास दीक्षा ली।[२३९] प्रस्तुत प्रसंग पर सहज ही ऋग्वेद के यमी सूक्त की स्मृति हो आती है। भाई यम से भगिनी यमी ने वरण करने की अभ्यर्थना की, पर भ्राता यम भगिनी की बात को स्वीकारता नहीं है। जबकि यहाँ भ्राता की अभ्यर्थना बहन ठुकराती है।+

आचार्य जिनसेन के अभिमतानुसार सुन्दरी ने प्रथम-प्रवचन को श्रवण कर ब्राह्मी के साथ ही दीक्षा ग्रहण की थी।[२४०]

अठानवें भ्राताओं की दीक्षा

यह बताया जा चुका है कि श्री ऋषभदेव अपने सौ पुत्रों को पृथक्-पृथक् राज्य देकर श्रमण बने थे। सम्राट् भरत चक्रवर्ती बनना चाहते

तथा यदेव देवेन, प्रव्रजन्ती न्यषिध्यत।
ततः प्रभृत्यसौ तस्थौ, भावतः संयतैव हि॥
—त्रिषष्ठि १।४।७४५–७४६

(ख) तेहिं सिट्ठं-जहा आयंबिलेण पारेति, ताहे तस्स पयणुरागो जाओ।
—आवश्यक चूर्णि, पृ० २०६

२३९. भणति-जदि तातं भजसि तो वच्चतु पव्वयतु, अह भोगट्ठी तो अच्छतु, ताहे पादेसु पडिता, विसज्जिया, पव्वइया।
—आवश्यकचूर्णि पृ० २०६

(ख) सा य भणिया जइ रुच्चति तो मए समं भोगे भुंजाहि; ण वि तो पव्वयाहित्ति। ताहे पाएसु पडिया विसज्जिया पव्वइया।
—आवश्यक सूत्र मल० वृत्ति पृ० २३१।१

\+ दर्शन अने चिन्तनः भ० ऋषभदेव अने तेमनो परिवार
— पृ० २३६-२३७ पं० सुखलालजी

२४०. सुन्दरी चात्रनिर्वेदा तां ब्राह्मीमन्वदीक्षित।
—महापुराण पर्व २४. श्लो० १७७, पृ० ५६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थे, अतः षट्खण्ड को तो उन्होंने जीत लिया था, पर अभी तक अपने भ्राताओं को अपना आज्ञानुवर्त्ती नहीं बना पाये थे; एतदर्थ अपने लघु भ्राताओं को अपने अधीन करने के लिए उन्होंने दूत प्रेषित किये।[२४१] अठानवें भ्राताओं ने मिलकर इस विषय में परस्पर परामर्श किया, परन्तु वे निर्णय पर नहीं पहुँच सके।[२४२] उस समय भगवान् श्री ऋषभदेव अष्टापद पर्वत पर विचर रहे थे। वे सभी भगवान् के पास पहुँचे।[२४३] स्थिति का परिचय कराते हुए नम्र निवेदन किया—प्रभो !

---

२४१. अन्नया भरहो तेसिं भातुगाणं पत्थवेति, जहा ममं रज्जं आयाणह;

—आवश्यकचूर्णि, पृ० २०६

(ख) अन्नया भरहो तेसिं भाउयाणं दूयं पट्ठवेइ, जहा-मम रज्जं आयाणह;

—आवश्यक मल०, २३१।१

(ग) प्राहिणोत्स निसृष्टार्थान् दूताननुजसन्निधिम्।

—महापुराण जिन० ३४।८६।१५६

२४२. ते भणंति-अम्हवि रज्जं ताएण दिण्णं, तुज्झवि, एतु ताव ताओ पुच्छिज्जिहिति, जं भणिहिति तं करीहामो,

—आवश्यक मल० वृत्ति० पृ० २३१।१

(ख) ते भणंति-अम्हवि रज्जं ताएहिं दिन्नं तुज्झवि, एतु ता तातो ताहे पुच्छिज्जिहित्ति, जं भणिहीत्ति तं काहामो।

—आवश्यकचूर्णि, पृ० २०६

(ग) प्रत्यक्षो गुरुरस्माकं प्रतपत्येष विश्वदृक्।
स नः प्रमाणमैश्वर्यं तद्वितीर्णमिदं हि नः॥
तदत्र गुरुपादाज्ञा तन्त्रा न स्वैरिणो वयम्।
न देयं भरतेशेन नादेयमिह किञ्चन॥

—महापुराण, जिन० ३४।९३–९४।१५६

२४३. आवश्यक चूर्णि पृ० २०६।

(ख) तेणं समएणं भयवं अट्ठावयमागओ विहरमाणो तत्थ सव्वे समोसरिया कुमारा।

—आवश्यक मल० वृत्ति, पृ० २३१।१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके द्वारा प्रदत्त राज्य पर भाई भरत ललचा रहा है। वह हम से राज्य छीनना चाहता है।[२४४] क्या बिना युद्ध किये हम उसे राज्य दे देवें? यदि हम देते हैं तो उसकी साम्राज्य लिप्सा बढ़ जायेगी और हम पराधीनता के पंक में डूब जायेंगे। भगवन्! क्या निवेदन करें? भरतेश्वर को स्वयं के राज्य से सन्तोष नहीं हुआ तो उसने अन्य राज्यों को अपने अधीन किया किन्तु उसकी तृष्णा वडवाग्नि की तरह शान्त नहीं हो रही है। वह हमें आह्वान करता है कि या तो तुम मेरी अधीनता स्वीकार करो, या युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाओ। आपश्री के द्वारा दिये गये राज्य को हम क्लीब की तरह उसे कैसे अर्पित कर दें? जिसे स्वाभिमान प्रिय नहीं है वही दूसरों की गुलामी करता है। और यदि हम राज्य के लिए अपने ज्येष्ठ भ्राता से युद्ध करते हैं तो भ्रातृ-युद्ध की एक अनुचित परम्परा का श्रीगणेश हो जाता है, अतः आप ही बताएँ, हमें क्या करना चाहिए ?[२४५]

(ग) ते दूतानभिधायैवं, तदैवाऽष्टापदाचले।
स्थितं समवसरणे, वृषभस्वामिनं ययुः॥

—त्रिषष्ठि० १।४।८०८

२४४. ताहे भणंति-तुब्भेहिं दिणाति रज्जाइं हरति भाया।

—आव० मल० वृ० पृ० २३१।

(ख) तदानिं तातपादैर्नः संविभज्य पृथक्-पृथक्।
देशराज्यानि दत्तानि, यथार्हं भरतस्य च॥
तैरेव राज्यैः सन्तुष्टास्तिष्ठामो विष्टपेश्वर!।
विनीतानामलङ्घ्या हि मर्यादा स्वामिदर्शिता॥

—त्रिषष्ठि १।४।८१९-८२०

२४५. (क) तो किं करेमो? किं जुज्झामो उदाहु आयाणामो?

—आवश्यक मल० वृ० पृ० २३१

(ख) आवश्यकचूर्णि, पृ० २०९।

(ग) स्वराज्येनाऽन्यराज्यैश्चाऽपहृतैर्भरतेश्वरः।
न सन्तुष्यति भगवन्! वडवाग्निरिवाऽम्बुभिः॥
आचिच्छेद यथाऽन्येषां राज्यानि पृथिवीभुजाम्।
अस्माकमपि भरतस्तद्वदाच्छेत्तुमिच्छति॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् बोले—पुत्रो ! तुम्हारा चिन्तन ठीक है। युद्ध भी बुरा है और कायर बनना भी बुरा है। युद्ध इसलिए बुरा है कि उसके अन्त में विजेता और पराजित दोनों को ही निराशा मिलती है। अपनी सत्ता को गँवाकर पराजित पछताता है और शत्रु बनाकर विजेता पछताता है। कायर बनने की भी मैं तुम्हें राय नहीं दे सकता, मैं तुम्हें ऐसा राज्य देना चाहता हूँ, जो सहस्रों युद्धों से भी नहीं प्राप्त किया जा सकता।

भगवान् की आश्वासन-भरी वाणी को सुनकर सभी के मुख-कमल खिल उठे, मन-मयूर नाच उठे। वे अनिमेष दृष्टि से भगवान् को निहारने लगे, किन्तु भगवान् की भावना को छू नहीं सके। यह उनकी कल्पना में नहीं आ सका कि भौतिक राज्य के अतिरिक्त भी कोई राज्य हो सकता है। वे भगवान् के द्वारा कहे गये राज्य को पाने के लिए व्यग्र हो गये। उनकी तीव्र लालसा को देखकर भगवान् बोले :—

"भौतिक राज्य से आध्यात्मिक राज्य महान् है,[२४६] सांसारिक

त्यज्यन्तामाशु राज्यानि, सेवा वा क्रियतां मम।
आदिदेशेति पुरुषैर्भरतो नः परानिव ॥
वचोमात्रेण मुञ्चामस्तस्याऽऽत्मबहुमानिनः।
तातदत्तानि राज्यानिः क्लीबा इव कथं वयम् ?
सेवामपि कथं कुर्मो, निरीहा अधिकर्द्धिषु ?।
अतृप्ता एव कुर्वन्ति सेवां मानविघातिनीम् ॥
राज्यामुक्तावसेवायां युद्धं स्वयमुपस्थितम्।
तातपादांस्त्वनापृच्छ्य, न किंचित् कर्तुमीश्महे ॥

—त्रिषष्ठि १।४।८२१–८२६

२४६. आवश्यक चूर्णि पृ० २०६।

(ख) ताहे सामी भोगेसु नियत्तावेमाणो तेसिं धम्मं कहेइ, न मुत्ति-सरिसं सुहमत्थि।

—आवश्यक मल० वृ० पृ० २३१

(ग) दीक्षा रक्षा गुणा भृत्या दयेयं प्राणवल्लभा।
इति ज्यायस्तपोराज्यमिदं श्लाघ्यपरिच्छदम् ॥

—महापुराण ३४।१२४।१६१ द्वि० भा०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुखों से आध्यात्मिक सुख विशेष है।[२४७] इसे ग्रहण करो, इसमें न कायरता की आवश्यकता है और न युद्ध का ही प्रसंग है।

मूर्ख लकडहारे[२४८] का रूपक देते हुए भगवान् ने कहा—एक लकड़हारा था, वह भाग्यहीन और अज्ञ था। प्रतिदिन कोयले बनाने के लिए वह जंगल में जाता और जो कुछ भी प्राप्त होता उससे अपना भरण पोषण करता। एक बार वह भीष्म-ग्रीष्म की चिल-चिलाती धूप में थोड़ा-सा पानी लेकर जंगल में गया। सूखी लकड़ियाँ एकत्रित कीं। कोयले बनाने के लिए उन लकड़ियों में आग लगादी।

चिलचिलाती धूप, प्रचण्ड ज्वाला, तथा गर्म लू के कारण उसे अत्यधिक प्यास लगी। साथ में जो पानी लाया था वह पी गया, पर प्यास शान्त न हुई। इधर उधर जंगल में पानी की अन्वेषणा की, पर, कहीं भी पानी उपलब्ध नहीं हुआ। सन्निकट कोई गाँव भी नहीं था, प्यास से गला सूख रहा था, घबराहट बढ़ रही थी। वह एक वृक्ष

---

२४७. भगवती १४, उद्दे० ६।

२४८. ताहे इंगालदाहगदिट्ठंतं कहेति, जहा एगो इंगालदाहगो, सो एगं भायणं पाणियस्स भरेऊण गतो, तं तेण उदगं णिट्ठवितं, उवरिं आदिच्चो पासे अग्गी पुणो परिस्समो दारुगाणि कोट्टेंतस्स घरं गतो, तत्थ पाणितं पीतो, एवं असब्भावपट्ठवणाए कूवतलागणदिदहसमुद्दा य सव्वे पीता, ण य तण्हा छिज्जति, ताहे एगंमि तुच्छकुहितविरस-पाणिए जुन्नकूवभिरिडे तणपूलितं गहाय उस्सिचति, जं पडितसेसं तं जीहाए लिहति, से केस णं ! एवं तुब्भेहिवि अणंतरं सव्वट्ठे अणुत्तरा सव्वेऽवि सव्वलोए सद्दफरिसा अणुभूतपुव्वा तहवि तित्ति ण गता, तो णं इमे माणुस्सए असुइए तुच्छे अप्पकालिए विरसे कामभोगे अभिलसह, एवं वेयालीयं णाम अज्झयणं भासति "संबुज्झह किण्ण बुज्झह"

—आवश्यकचूर्णि जिनदास, पृ० २०६–२१०

(ख) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति।

(ग) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के नीचे लेट गया, नींद आगई। उसने स्वप्न देखा कि वह घर पहुँच गया है। घर पर जितना भी पानी है, पी गया है, तथापि प्यास शान्त नहीं हुई। कुँए पर गया और वहाँ का सारा पानी पी गया। पर प्यास नहीं बुझी। नदी, नाले और द्रहों का पानी पीता हुआ समुद्र पर पहुँचा, समुद्र का सारा पानी पी लेने पर भी उसकी प्यास कम नहीं हुई। तब वह एक पानी से रहित जीर्ण कूप के पास पहुँचा। वहाँ पानी तो नहीं था, किन्तु भीगे हुए तिनकों को देखकर मन ललचाया और उन तिनकों को निचोड़ कर प्यास बुझाने का प्रयास कर रहा था कि नींद खुल गई। रूपक का उपसंहार करते हुए भगवान् ने कहा—क्या पुत्रो ! उन भीगे हुए तिनकों से उस लकड़हारे की प्यास शान्त हो सकती है ? जबकि कुए, नदी, द्रह, तालाब और समुद्र के पानी से नहीं हुई थी !

पुत्रों ने एक स्वर से कहा--नहीं भगवन् ! कदापि नहीं।

भगवान् ने उन्हें अपने अभिमत की ओर आकृष्ट करते हुए कहा—पुत्रो ! राज्यश्री से तृष्णा को शांत करने का प्रयास भी भीगे हुए तिनकों को निचोड़कर पीने से प्यास बुझाने के प्रयास के समान है। दीर्घकालीन अपार स्वर्गीय सुखों से भी जब तृष्णा शान्त नहीं हुई तो इस तुच्छ और अल्पकालीन राज्य से कैसे हो सकती है? अतः सम्बोधि को प्राप्त करो। वस्तुतः जब तक स्वराज्य नहीं मिलता तब तक परराज्य की कामना रहती है। स्वराज्य मिलने पर परराज्य का मोह नहीं रह जाता।

भगवान् ने उस समय अपने पुत्रों को वैराग्यवर्द्धक एवं प्रभावजनक जो उपदेश दिया था, वह सूत्रकृतांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध के द्वितीय 'वैतालीय' नामक अध्ययन में उल्लिखित है। जिनदास महत्तर के उल्लेख से स्पष्ट है कि यह अध्ययन भगवान् के उसी उपदेश के आधार पर प्रवृत्त हुआ है। उस उपदेश में बतलाया गया है कि - 'मानव को शीघ्र-से-शीघ्र प्रतिबोध लाभ करना चाहिए, क्योंकि व्यतीत समय लौटकर नहीं आता और पुनः मनुष्यभव सुलभ नहीं है। प्राप्त जीवन का भी कोई ठिकाना नहीं। बालक, वृद्ध यहाँ तक कि गर्भस्थ मनुष्य भी मृत्यु के शिकार हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाते हैं। जगत् का उत्कृष्ट-से-उत्कृष्ट वैभव भी मृत्यु का निवारण करने में समर्थ नहीं है। यही कारण है कि देव, दानव, गंधर्व, भूमिचर, सरीसृप, राजा और बड़े-बड़े सेठ, साहूकार भी दुःख के साथ अपने स्थान से च्युत होते देखे जाते हैं। बन्धन से च्युत ताल फल के समान आयु के टूटने पर जीव मृत्यु को प्राप्त होते हैं, इत्यादि।'

वस्तुतः यह सम्पूर्ण अध्ययन अतीव मार्मिक और विस्तृत है। मुमुक्षुजनों के लिए मननीय है।

भागवतकार ने भी भगवान् के पुत्रोपदेश का वर्णन दिया है, जिसका सार इस प्रकार है—पुत्रो ! मानवशरीर दुःखमय विषयभोग प्राप्त करने के लिए नहीं है। ये भोग तो विष्टाभोजी कूकरशूकरादि को भी प्राप्त होते हैं, अतः इस शरीर से दिव्य तप करना चाहिए क्योंकि इसी से परमात्मतत्व की प्राप्ति होती है।[२४९]

प्रमाद के वश मानव कुकर्म करने को प्रवृत्त होता है। वह इन्द्रियों को तृप्त करने के लिए प्रवृत्ति करता है, पर मैं उसे श्रेष्ठ नहीं समझता, क्योंकि उसी से दुःख प्राप्त होता है।[२५०] जब तक आत्मतत्त्व की जिज्ञासा नहीं होती तब तक स्वस्वरूप के दर्शन नहीं होते, वह विकार और वासना के दलदल में फँसा रहता है और उसी से बन्धन की प्राप्ति होती है।[२५१]

---

२४९. नायं देहो देहभाजां नृलोके
कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं
शुद्ध्येद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम् ॥
—श्रीमद् भागवत ५।५।१।५५९

२५०. नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म,
यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति।
न साधु मन्ये यत आत्मनोऽय–
मसन्नपि क्लेशद आस देहः ॥
—श्रीमद् भागवत ५।५।४।५५९

२५१. पराभवस्तावदबोध–जातो,
यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्त्वम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार अविद्या के द्वारा आत्म-स्वरूप आच्छन्न होने से कर्मवासनाओं से वशीभूत बना हुआ चित्त मानव को फिर कर्म में प्रवृत्त करता है। अतः जब तक मुझ परमात्मा में प्रीति नहीं होती तब तक देहबन्धन से मुक्ति नहीं मिलती।[२५२]

स्वार्थ में उन्मत्त बना जीव जब तक विवेकदृष्टि का आश्रय लेकर इन्द्रियों की चेष्टाओं को अयथार्थ रूप में नहीं देखता है, तब तक आत्मस्वरूप विस्मृत होने से वह गृह आदि में ही आसक्त रहता है और विविध प्रकार के क्लेश उठाता है।[२५३]

इस प्रकार भगवान् की दिव्य देशना में राज्य-त्याग की बात को सुनकर वे सभी अवाक् रह गये, पर शीघ्र ही उन्होंने भगवान् के प्रशस्त पथप्रदर्शन का स्वागत किया। अठानवें ही भ्राताओं ने राज्य त्यागकर संयम ग्रहण किया।[२५४]

यावत्क्रियास्तावदिदं मनो वै;
कर्मात्मकं येन शरीरबन्धः ॥
—भागवत ५।५।५।५६०

२५२. एवं मनः कर्मवशं प्रयुङ्क्ते,
अविद्ययाऽऽत्मन्युपधीयमाने ।
प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे,
न मुच्यते देहयोगेन तावत् ॥
—भागवत ५।५।६।५६०

२५३. यदा न पश्यत्ययथा गुणेहां,
स्वार्थे प्रमत्तः सहसा विपश्चित् ।
गतस्मृतिर्विन्दति तत्र तापा-
नासाद्य मैथुन्यमगारमज्ञः ॥
—भागवत ५।५।७।५६०

२५४. (क) एवं अट्ठाणउईए वित्तेहिं अट्ठाणउई कुमारा पव्वइता ।
—आवश्यक चूर्णि

(ख) एवं अट्ठाणउईवित्तेहिं अट्ठाणउई कुमारा पव्वइयत्ति ।
—आवश्यक मल० वृ० प० २३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्राट् भरत को यह सूचना मिली तो वह दौड़ा-दौड़ा आया। भ्रातृ प्रेम से उसकी आँखें गीली हो गईं। पर उसकी गीली आँखें अठानवें भ्राताओं को पथ से विचलित नहीं कर सकीं। भरत निराश होकर पुनः घर लौट गया।[२५५-२५६]

भरत और बाहुबली

भरत समग्र भारत में यद्यपि एक शासनतन्त्र के द्वारा एक अखण्ड भारतीय संस्कृति की स्थापना करने के लिए प्रयत्नशील थे, मगर दूसरों की स्वतन्त्रता को सीमित किये बिना उनका उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता था। ९८ भाइयों के दीक्षित होने से यद्यपि उनका पथ निष्कण्टक बन गया था, तथापि एक बड़ी बाधा अब भी उनके सामने थी। वह थी बाहुबली को अपना आज्ञानुवर्ती बनाना। इसके लिए उसने अब अपने लघु भ्राता बाहुबली को यह सन्देश पहुँचाया

(ग) अमन्दानन्दनिःस्यन्दनिर्वाणप्राप्तिकारणम्।
वत्साः ! संयमराज्यं तद्, युज्यते वो विवेकिनाम् ॥
तत्कालोऽत्पन्नसंवेगवेगा भगवदन्तिके।
तेऽष्टानवतिरप्याशु, प्रव्रज्यां जगृहुस्ततः ॥
—त्रिषष्ठि० १।४।८४४-८४५ प० १२०

(घ) इत्याकर्ण्य विभोर्वाक्यं परं निर्वेदमागताः।
महाप्राव्राज्यमास्थाय निष्क्रान्तास्ते गृहाद्वनम् ॥
—महापुराण ३४।१२५।१६२

२५५-२५६. आणवण भाउआणं समुसरणे पुच्छ दिट्ठन्तो।
—आव० नि० गा० ३४८

(ख) जदि भातरो मे इच्छंति तो भोगे देमि, भगवं च आगतो, ताहे भाउए भोगेहिं निमंतेति, ते ण इच्छंति वंतं असितुं।
—आवश्यक चूर्णि पृ० २१२

(ग) भरतोऽपि भ्रातृप्रव्रज्याकर्णनात् सञ्जातमनस्तापोऽधृति चक्रे, कदाचिद्भोगादीन् दीयमानान् पुनरपि गृह्णन्तीत्यालोच्य भगवत्समीपं चागम्य निमन्त्रयंश्च तान्।
—आवश्यक मल० वृ० प० २३५

(घ) त्रिषष्ठि० १।६।१९०-१९६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि वह अधीनता स्वीकार करले। ज्योंही भरत का यह सन्देश सुना, त्योंही बाहुबली की भृकुटि तन गई। उपशान्त क्रोध उभर आया। दाँतों को पीसते हुए उसने कहा—"क्या भाई भरत की भूख अभी तक शान्त नहीं हुई है? अपने लघु भ्राताओं के राज्य को छीन करके भी उसे सन्तोष नहीं हुआ है। क्या वह मेरे राज्य को भी हड़पना चाहता है। यदि वह यह समझता है कि मैं शक्तिशाली हूँ और शक्ति से सभी को चट कर जाऊँगा तो यह शक्ति का सदुपयोग नहीं, दुरुपयोग है। मानवता का भयङ्कर अपमान है और व्यवस्था का अतिक्रमण है। हमारे पूज्य पिता व्यवस्था के निर्माता हैं और हम उनके पुत्र होकर व्यवस्था को भङ्ग करते हैं! यह हमारे लिए उचित नहीं है। बाहु-बल की दृष्टि से मैं भरत से किसी प्रकार कम नहीं हूँ। यदि वह अपने बड़प्पन को विस्मृत कर अनुचित व्यवहार करता है तो मैं चुप्पी नहीं साध सकता। मैं दिखा दूँगा भरत को कि आक्रमण करना कितना अनुचित है। जब तक वह मुझे नहीं जीतता तब तक विजेता नहीं है।[२५७]

भरत विराट् सेना लेकर बाहुबली से युद्ध करने के लिए "बहली देश" की सीमा पर पहुँच गये। बाहुबली भी अपनी छोटी सेना सजाकर युद्ध के मैदान में आगया। बाहुबली के वीर सैनिकों ने भरत की

---

२५७. जाहे ते सव्वे पव्वइता ताहे भरहेण बाहुबलिस्स पत्थवितं, ताहे सो ते पव्वइते सोऊण आसुरत्तो भणति—ते बाला तुमे पव्वाविता, अहं पुण जुद्धसमत्थो। किं वा ममंमि अजिते तुमे जितं ति? ता एहि अहं वा राया तुमं वा।

—आवश्यक चूर्णि, पृ० २१०

(ख) कुमारेसु पव्वइएसु भरहेण बाहुबलिणो दूओ पेसिओ, सो ते पव्वइए सोउं आसुरुत्तो, ते बाला तुमए पव्वाविया।

—आवश्यक मल० वृ० प० २३१

हृत्वाऽनुजानां राज्यानि, नूनमेष न लज्जितः।
जितकासी राज्यकृते, मामप्याह्वयते यतः॥

—त्रिषष्ठि० १।५।४९७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विराट् सेना के छक्के छुड़ा दिये। लम्बे समय तक युद्ध चलता रहा, पर न भरत ही जीते और न बाहुबली ही। अन्त में बाहुबली के कहने पर निर्णय किया कि व्यर्थ ही मानवों का रक्त-पात करना अनुचित है, क्यों न हम दोनों मिलकर युद्ध करलें।[२५८]

दिगम्बराचार्य जिनसेन ने दोनों भाइयों के जलयुद्ध, दृष्टियुद्ध और बाहुयुद्ध इन तीन युद्धों का निरूपण किया है।[२५९]

आचार्य जिनदास गणिमहत्तर ने दृष्टि युद्ध, वाग् युद्ध, बाहु युद्ध और मुष्टि युद्ध का प्ररूपण किया है।[२६०]

उपाध्याय श्री विनय विजय जी ने दृष्टि युद्ध, वाग् युद्ध, मुष्टि-युद्ध, दण्ड युद्ध इन चार युद्धों का निर्देश किया है।[२६१]

आवश्यक भाष्यकार,[२६२] तथा आचार्य हेमचन्द्र[२६३] व

---

२५८. ताहे ते सव्वबलेण दोवि देसंते मिलिया, ताहे बाहुबलिणा भणितं—किं अणवराहिणा लोगेण मारिएण ? तुमं अहं च दुयगा जुज्झामो, एवं होउत्ति।

—आवश्यक चूर्णि पृ० २१०

२५९. जलदृष्टिनियुद्धेषु, योऽनयोर्जयमाप्स्यति।
स जयश्रीविलासिन्याः पतिरस्तु स्वयंवृतः॥

—महापुराण ३३।४५।२०४। द्वि० भा०

२६०. तेसिं पढमं दिट्ठिजुद्धं जातं, तत्थ भरहो पराजितो। पच्छा वायाए, तहिंपि भरहो पराजितो, एवं बाहुजुद्धेऽवि पराजितो, ताहे मुट्ठिजुद्धं जातं तत्थवि पराजितो।

—आवश्यक चूर्णि पृ० २१०

२६१. कल्पसूत्र, सुबोधिका टीका पृ० ५१३ सारा० न०

२६२. पदमं दिट्ठीजुद्धं वायाजुद्धं तहेव बाहाहिं।
मुट्ठीहि अ दंडेहि अ सव्वत्थवि जिप्पए भरहो॥

—आवश्यक भाष्य गा० ३२

२६३. त्रिषष्टि० पर्व १, सर्ग ५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समयसुन्दर[२६४] प्रभृति ने दृष्टि युद्ध, वाक्युद्ध, बाहुयुद्ध, मुष्टि युद्ध और दण्डयुद्ध इन पाँच का वर्णन किया है। सभी में सम्राट् भरत पराजित हुए और बाहुबली विजयी हुए। भरत को अपने लघु भ्रातासे पराजित होना अत्यधिक अखरा।[२६५] आवेश में आकर और मर्यादा को विस्मृत कर बाहुबली के शिरश्छेदन करने हेतु भरत ने चक्र का प्रयोग किया। यह देख बाहुबली का खून उबल गया। बाहुबली ने उछलकर चक्र को पकड़ना चाहा, पर चक्र बाहुबली की प्रदक्षिणा कर पुनः भरत के पास लौट गया। बाहुबली का बाल भी बाँका न हुआ।[२६६] यह देख सभी सन्न

---

२६४. पंचयुद्धानि स्थापितानि (१) दृष्टियुद्ध, (२) वाग्युद्ध, (३) बाहुयुद्ध, (४) मुष्टियुद्ध, (५) दण्ड युद्धानि। एतैः पञ्चयुद्धैः योजितः स जितो ज्ञेयः।

—कल्पलता – समयसुन्दर पृ० २१०

(ख) कल्पार्थ बोधिनी पृ० १५१।

(ग) कल्पद्रुम कलिका पृ० १५२।

२६५. सो एव जिप्पमाणो विहुरो अह नरवई विचिंतेइ।
किं मन्ने एस चक्की ? जह दाणिं दुब्बलो अहयं॥

—आवश्यक भाष्य गा० ३३

(ख) ताहे सो एवं जिव्वमाणो विधुरो अह णरवती विचिंतेति किं मन्ने एस चक्की जह दाणिं दुब्बलो अहयं, तस्सेवं संकप्पे देवता आउहं देंति डंडरयणं, ताहे सो तेण गहितेण धावति।

—आवश्यक चूर्णि० २१०

(ग) क्रोधान्धेन तदा दध्ये, कर्तुमस्य पराजयम्।
चक्रमुत्कृत्तनिशेषद्विषच्चक्रं निधीशिना॥
आध्यानमात्रमेत्याराद् अदः कृत्वा प्रदक्षिणाम्।
अवध्यस्यास्य पर्यन्तं तस्थौ मन्दीकृतातपम्॥

—महापुराण, पर्व ३६, श्लो० ६५–६६ भा० २ पृ० २०५

२६६. एवं विमृशतस्तक्षशिलाभर्तुरुपेत्य तत्।
चक्रं प्रदक्षिणां चक्रमन्तेवासी गुरोरिव॥
न चक्रं चक्रिणः शक्तं, सामान्येऽपि स्वगोत्रजे।
विशेषस्तु चरमशरीरे नरि तादृशे॥

—त्रिषष्ठि० १'५।७२२।७२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रह गये। बाहुबली की विरुदावली से भू-नभ गूँज उठा। भरत अपने दुष्कृत्य पर लज्जित हो गये।[२६७]

इस घटना से क्रुद्ध हो बाहुबली ने भरत पर प्रहार करने के लिए अपनी प्रबल मुट्ठी उठाई। उसे देख लाखों कण्ठों से ये स्वर लहरियाँ फूट पड़ीं—सम्राट् भरत ने भूल की है, पर आप भूल न करें। लघु भाई के द्वारा बड़े भाई की हत्या अनुचित ही नहीं, अत्यन्त अनुचित है।[२६८] महान् पिता के पुत्र भी महान् होते हैं। क्षमा कीजिये, क्षमा करने वाला कभी छोटा नहीं होता।

बाहुबली का रोष कम हुआ। उठा हुआ हाथ भरत पर न पड़कर स्वयं के सिर पर गिरा। वे लुंचन कर श्रमण बन गये।[२६९] राज्य को ठुकराकर पिता के चरण-चिह्नों पर चल पड़े।[२७०]

सफलता नहीं मिली

बाहुबली के पैर चलते-चलते रुक गये। वे पिता श्री के शरण में पहुँचने पर भी चरण में नहीं पहुँच सके। पूर्व दीक्षित लघु भ्राताओं को

---

२६७. भरतस्तं तथा दृष्ट्वा, विचार्य स्वं कुकर्म च।
बभूव न्यञ्चितग्रीवो, विविक्षुरिव मेदिनीम्॥
—त्रिषष्ठि १।४।७४६

२६८. अमर्षाच्चिन्तयित्वैवं सुनन्दानन्दनो दृढाम्।
मुष्टिमुद्यम्य यमवद् भीषणः समधावत॥
करीवोन्मुद्गरकरः कृतमुष्टिकरो द्रुतम्।
जगाम भरताधीशान्तिकं तक्षशिलापतिः॥
—त्रिषष्ठि० १।५।७२७–७२८

२६९. इत्युदित्वा महासत्त्वः सोऽग्रणीःशीघ्रकारिणाम्।
तेनैव मुष्टिना मूर्ध्नं, उद्दध्रे तृणवत् कचान्॥
—त्रिषष्ठि० १।५।७४०

२७०. सोऽप्येवं चिन्तयामास प्रतिपन्नमहाव्रतः।
किं तातपादपद्मान्तमहं गच्छामि सम्प्रति ?॥
—त्रिषष्ठि० १।५।७४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमन करने की बात स्मृति में आते ही उनके चरण एकान्त शान्त कानन में ही स्तब्ध हो गये, असन्तोष पर विजय पाने वाले बाहुबली अस्मिता से पराजित हो गये। एक वर्ष तक हिमालय की तरह अडोल ध्यान-मुद्रा में अवस्थित रहने पर भी केवल ज्ञान का दिव्य आलोक प्राप्त नहीं हो सका। शरीर पर लताएँ चढ़ गईं, पक्षियों ने घौंसले बना लिये, पैर वल्मीकों (बाँबियों) से वेष्टित हो गए, तथापि सफलता नहीं मिली।[२७१]

बाहुबली को केवलज्ञान

एक वर्ष के पश्चात् भगवान् श्री ऋषभदेव ने बाहुबली में अन्तर्ज्योति जगाने के लिए ब्राह्मी और सुन्दरी को प्रेषित किया।

---

२७१. पच्छा बाहुबली चिंतेति—अहं किं तायाणं पासं वच्चामि ? इहं चेव अच्छामि जाव केवलणाणं उप्पज्जति। एवं सो पडिमं ठितो पव्वयसिहरो। सामी जाणति तहवि ण पत्थवेति, अमूढलक्खा तित्थगरा। ताहे संवच्छरं अच्छति काउस्सग्गेणं वल्लीवितागेण वेढितो पादा य वम्मिएण।

—आवश्यक चूर्णि–पृ० २१०

(ख) बाहुबली विचिंतेइ—तायसमीवे भाउणो मे लघुतरा समुप्पण्णणाणातिसया ते किह निरतिसओ पेच्छामि ? एत्थेव ताव अच्छामि जाव केवलनाणं समुप्पज्जति, एवं सो पडिमं ठिओ, ठिओ माणपव्वयसिहरे, जाणइ सामी तहवि न पट्ठवेइ, अमूढलक्खा तित्थयरा, ताहे संवच्छरं अच्छइ काउस्सग्गेण, वल्लीवितागेणं वेढिओ पाया य वम्मीयनिग्गएहिं भुयंगेहिं।

—आवश्यक मलयगिरि वृत्ति० प० २३२।१

(ग) शरीरमधिरूढैस्तैर्लंबमानैर्भुजंगमैः ।
बभौ बाहुबलिर्बाहुसहस्रमिव धारयन् ।।
पादपर्यंतवल्मीकविनिर्यातैर्महोरगैः ।
पादयोर्वेष्टयांचक्रे स पादकटकैरिव ।।
इत्थं स्थितस्य ध्यानेन तस्यैको वत्सरो ययौ ।
विनाऽऽहारं विहरतो वृषभस्वामिनो यथा ।।

—त्रिषष्ठि० १।५।७७६–से ७७८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगिनीद्वय ने बाहुबली को नमन किया, और कहा—"हस्ती पर आरूढ व्यक्ति को कभी केवल ज्ञान की उपलब्धि नहीं होती, अतः नीचे उतरो"[२७२]– ये शब्द बाहुबली के कर्ण कुहरों में गिरे, चिन्तन का प्रवाह बदला,– कहाँ है यहाँ हाथी ? क्या अभिप्राय है इनका ? हाँ, समझा, मान हाथी है और मैं उस पर आरूढ़ हूँ। मैं व्यर्थ ही अवस्था के भेद में उलझ गया। वे भाई वय में भले ही मुझ से छोटे हैं, पर चारित्रिक दृष्टि से बड़े हैं। मुझे नमन करना चाहिए।" नमन करने के लिए ज्यों ही पैर उठे कि बन्धन टूट गये। विनय ने अहंकार को पराजित किया। केवली बन गये। भगवान् के चरणों में पहुँच

---

२७२. पुन्ने संवत्सरे भगवं बंभी सुंदरीओ पत्थवेति। पुव्वि ण पत्थिताओ जेण तदा सम्मं ण पडिवज्जिहिति, ताहे सो मग्गंतीहिं वल्लीहि य तरुहि य वेढितेण य महल्लेणं कुच्चेणं तं दट्ठूणं वंदितो ताहिं, इमं च भणितो—"ण किर हत्थि विलगस्स केवलनाणं उप्पज्जइ" एवं भणिऊण गताओ।

—आवश्यक चूर्णि–पृ० २१०–२११

(ख) पुण्णे य संवच्छरे भगवं बंभिसुंदरीओ पट्ठवेइ, पुव्वि नेव पट्ठविया जेण तया सम्मं न पडिवज्जइत्ति, ताहिं सो मग्गंतीहिं वल्लीतणवेढिओ दिट्ठो परूढेणं महल्लेणं गव्वेणं ति। तं दट्ठूण वंदिओ इमं च भणिओ—"न किर हत्थीविलगस्स केवल नाणं समुप्पज्जइ त्ति भणिऊणं गयाओ।

—आवश्यक नि० मल० वृत्ति० पृ० २३२

(ग) निपुणं लक्षयित्वा तं कृत्वा त्रिश्च प्रदक्षिणाम्।
महामुनिं बाहुबलिं, ते वन्दित्वैवमूचतुः ॥
आज्ञापयति तातस्त्वां, ज्येष्ठार्य ! भगवानिदम्।
हस्तिस्कन्धाधिरूढानामुत्पद्येत न केवलम् ॥

— त्रिषष्ठि० १।५।७८७–७८८

(घ) कल्पलता, समय सुन्दर पृ० २११।१

(ङ) कल्पद्रुम कलिका लक्ष्मी० पृ० १५२

(च) कल्पार्थ बोधिनी पृ० १४४–१४५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गये। भगवान् श्री ऋषभदेव को नमन कर केवलीपरिषद् में बैठ गये।[२७३]

आचार्य श्री जिनसेन ने प्रस्तुत घटना का उल्लेख अन्य प्रकार

---

२७३. ताहे सो पचिन्ति तो "कहिं एत्थ हत्थी ? तातो य अलियं न भणति।" एवं चिंतितेण णातं, जहा माणहत्थी अत्थित्ति, को य मम माणो ? तं बच्चामि भगवं वंदामि ते य साहुणोत्ति, पाओ उक्खित्तो, केवलनाणं च उप्पन्नं, ताहे केवलिपरिसाए ट्ठितो।

—आवश्यक चूर्णि पृ० २११

(ख) ताहे चिंतियाइओ—कहिं एत्थ हत्थी ? ताओ य अलियं न भणति, ततो चिंतेंतेण णायं—जहा माणहत्थित्ति, को य मम माणो ? वच्चामि भगवंतं वंदामि ते य साहुणोत्ति, पादे उक्खित्ते केवलनाणं समुप्पण्णं।

——आवश्यक मल० वृ० प० २३२

(ग) इदानीमपि गत्वा तान् वन्दिष्येऽहं महामुनीन्।
चिन्तयित्वेति स महासत्त्वः पादमुदक्षिपत्॥
लतावल्लीवत् त्रुटितेष्वभितो घातिकर्मसु।
तस्मिन्नेव पदे ज्ञानमुत्पेदे तस्य केवलम्॥
उत्पन्नकेवलज्ञानदर्शनः सौम्यदर्शनः।
रवेरिव शशी सोऽथ, जगाम स्वामिनोऽन्तिकम्॥
प्रदक्षिणां तीर्थकृतो विधाय।
तीर्थाय नत्वा च जगन्नमस्यः॥
महामुनिः केवलिपर्षदन्त—
स्तीर्णप्रतिज्ञो निषसाद सोऽथ॥

—त्रिषष्ठि० १।५।७६५–७६८

(घ) उप्पन्ननाणरयणो तित्तपइण्णो जिणस्स पयमूले।
गंतुं तित्थं नमिउं केवलि परिसाइ आसीणो॥

—आवश्यक भाष्य० गा० ३५

(ङ) यावच्चरणौ उदक्षिपत्तावत्केवलमप्रापत्।

—कल्पार्थ बोधिनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से करते हुए बताया है कि बाहुबली श्रमण बनकर एक वर्ष तक ध्यानस्थ रहे। भरत के अकृत्य का विचार उनके अन्तर्मानस में बना रहा। जब एक वर्ष के पश्चात् भरत आकर उनकी अर्चना करते हैं तब उनका हृदय निःशल्य बनता है और केवल ज्ञान उत्पन्न होता है।[२७४]

अनासक्त भरत

भरत ने अपने भ्राताओं के साथ जो व्यवहार किया था, उससे वे स्वयं लज्जित थे। भ्राताओं को गँवाकर राज्य प्राप्त कर लेने पर भी उनके अन्तर्मानस में शान्ति नहीं थी। विराट् राज्य का उपभोग करते हुए भी वे उसमें आसक्त नहीं थे। सम्राट् होने पर भी वे साम्राज्यवादी नहीं थे।

एक बार भगवान् श्री ऋषभदेव अपने शिष्यवर्गसहित विनीता के बाग में पधारे। जनसमूह धर्मदेशना श्रवण करने को आया। प्रवचन परिषद् में ही एक सज्जन ने भगवान् से प्रश्न किया—"भगवन्! क्या भरत मोक्षगामी है?" वीतराग भगवान् ने कहा—'हाँ'। प्रश्नकर्ता ने कहा—'आश्चर्य है भगवान् होकर भी पुत्र का पक्ष लेते हैं।'

भरत ने सुना और सोचा—भगवान् पर यह आरोप लगा रहा है। इसे मुझे शिक्षा देनी चाहिए। दूसरे ही दिन उस व्यक्ति को फाँसी की सजा सुना दी गई। फाँसी की सजा सुन वह घबराया, भरत के चरणों में गिरा, गिड़गिड़ाया, अपराध के लिए क्षमा माँगने लगा।

भरत ने कहा—तैल से परिपूरित कटोरे को लेकर विनीता के बाजारों में घूमो। स्मरण रखना, एक बूँद भी नीचे न गिरने पाये। नीचे गिरते ही फाँसी के तख्ते पर लटका दिये जाओगे। यदि एक बूँद भी नीचे न गिरेगी तो तुम्हें मुक्त कर दिया जायेगा।

---

२७४. संक्लिष्टो भरताधीशः सोऽस्मत्त इति यत्किल।
हृद्यस्य हार्दं तेनासीत् तत्पूजाऽपेक्षि केवलम्॥
—महापुराण जिन० ३६।१८६।२१७ द्वि० भा०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभियुक्त सम्राट् के आदेशानुसार घूमकर लौट आया।

सम्राट् ने प्रश्न किया—क्या तुम नगर में घूमकर आये हो? अभियुक्त ने विनीत मुद्रा में कहा—हाँ महाराज! सम्राट् ने पुनः प्रश्न किया—नगर में तुमने क्या-क्या देखा?

अभियुक्त ने निवेदन किया—कुछ भी नहीं देखा भगवन्!

सम्राट् ने पुनः पूछा—क्या नगर में जो नाटक हो रहे थे वे तुमने नहीं देखे? क्या नगर में जो संगीत मण्डलियाँ यत्रतत्र संगीत गा रही थीं उन्हें तुमने नहीं सुना।

अभियुक्त ने कहा—राजन्! जब मौत नेत्रों के सामने नाच रही हो तब नाटक कैसे देखे जा सकते हैं? और जब मौत की गुनगुनाहट कर्णकुहरों में चल रही हो तब गीत कैसे सुने जा सकते हैं?

सम्राट् ने मुस्कराते हुए कहा—क्या मृत्यु का इतना अधिक भय है?

अभियुक्त ने कहा—सम्राट् को इसका क्या पता? यह तो मृत्यु-दण्ड पाने वाला ही अनुभव कर सकता है।

सम्राट् ने कहा—तो क्या सम्राट् अमर है? उसे मृत्यु का साक्षात्कार नहीं करना पड़ेगा? तुम तो एक जीवन की मृत्यु से ही इतने अधिक भयाक्रान्त हो गए कि आँखों के सामने नाटक होने पर भी नाटक नहीं देख सके और कानों के पास संगीत की सुमधुर स्वर लहरियाँ झनझनाने पर भी संगीत नहीं सुन सके। परन्तु बन्धु, तुम्हें यह ज्ञात होना चाहिये कि मैं तो मृत्यु की दीर्घपरम्परा से परिचित हूँ अतः मुझे अब साम्राज्य का विराट् सुख भी नहीं लुभा पा रहा है। मैं तन से गृहस्थाश्रम में हूँ, पर मन से उपरत हूँ।

अभियुक्त को अब भगवान् के सत्य कथन पर शंका नहीं रही। उसे अपना अपराध समझ में आ गया। उसे मुक्त कर दिया गया।[२७५]

भरत से भारतवर्ष

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रतापपूर्ण प्रतिभासम्पन्न

---

२७५. (ख) जैन धर्म और दर्शन—मुनि नथमल पृ० १४
(ग) जैन दर्शन के मौलिक तत्त्व पृ० १४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भरत एक अतिजात पुत्र थे। पिता के द्वारा प्राप्त राज्यश्री को उन्होंने अत्यधिक विस्तृत किया और छः खण्ड के अधिपति चक्रवर्ती सम्राट् बने।[२७६] केवल तन पर ही नहीं, अपितु प्रजा के मन पर शासन किया। उनकी पुण्य संस्मृति में ही प्रकृत देश का नाम भारतवर्ष हुआ।

वसुदेव हिंडी[२७७], जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति[२७८], श्रीमद्भागवत[२७९], वायुपुराण[२८०], अग्निपुराण[२८१], महापुराण[२८२], नारदपुराण[२८३],

---

२७६. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति भरताधिकार

२७७. तत्थ भरहो भरहवासचूडामणी ।
तस्सेव नामेण इहं भारहवासं ति पव्वुचति ।।
—वसुदेवहिण्डी प्र० खं० पृ० १८६

२७८. भरतनाम्नश्चक्रिणो देवाच्च भारतनाम प्रवृत्तं भरतवर्षाच्च तयोर्नाम ।
—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृत्ति

२७९. येषां खलु महायोगी ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण
आसीद्येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति ।
—श्री मद्भागवत पुराण स्कंध ५, अ० ४।६

(ख) अजनाभं नामैतद्वर्षं भारतमिति यत आरभ्य व्यपदिशन्ति ।
—श्री मद्भागवत ५।७।३। पृ० ५६६

(ग) तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः ।
विख्यातं वर्षमेतद् यन्नाम्ना भारतमद्भुतम् ।।
—भागवत ११।२।१७

२८०. हिमाह्वयं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत् ।
तस्माद् भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः ।।
—वायुपुराण अध्या० ३३, श्लो० ५२

२८१. भरताद् भारतं वर्षं भरतात् सुमतिस्त्वभूत् ।।
—अग्निपुराण अ० १० श्लो० १२

२८२. तन्नाम्ना भारतं वर्षमिति हासीज्जनास्पदम् ।
हिमाद्रेरासमुद्राच्च क्षेत्रं चक्रभृतामिदम् ।।
—महापुराण १५।१५८।३३६

२८३. आसीत् पुरा मुनिश्रेष्ठो, भरतो नाम भूपतिः ।
आर्षभो यस्य नाम्नेदं भारतं खण्डमुच्यते ।।
—नारदपुराण अध्या० ४८ श्लो० ५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विष्णु पुराण[२८४], गरुड़पुराण[२८५], ब्रह्मपुराण[२८६], मार्कण्डेय पुराण[२८७], बाराह पुराण[२८८], स्कन्ध पुराण[२८९], लिङ्ग पुराण[२९०], शिवपुराण[२९१], विश्वकोष[२९२] प्रभृति ग्रन्थों के उद्धरणों के प्रकाश में भी यह

---

२८४. ऋषभाद् भरतो जज्ञे ज्येष्ठः पुत्रशताग्रजः ।
ततश्च भारतं वर्षमेतल्लोकेषु गीयते ।।
—विष्णुपुराण अंश २, अध्या० १ श्लो० ३२

२८५. गरुड़पुराण, अध्याय १, श्लो० १३

२८६. सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं महाप्राव्राज्यमास्थितः ।
हिमाह्वयं दक्षिणं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः ।।
—ब्रह्माण्ड० अ० १४; श्लो० ६१

२८७. अग्निन्ध्रसूनोर्नाभेस्तु ऋषभोऽभूत् सुतो द्विजः ।
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताद् वरः ।।
सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं महाप्राव्राज्यमास्थितः ।
तपस्तेपे महाभागः पुलहाश्रमसंश्रयः ।।
हिमाह्वयं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ ।
तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः ।।
—मार्कण्डेय पुराण ९३।३८–४०

२८८. हेमाद्रेर्दक्षिणं वर्षं महद् भारतं नाम शशास ।
—वाराह पुराण अध्याय० ७४

२८९. तस्य नाम्ना त्विदं वर्षं भारतं चेति कीर्त्यते ।
—स्कन्ध पुराण अध्या० ३७, श्लो० ५७

२९०. तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः ।
—लिंग पुराण, अध्याय ४७, श्लो० २४

२९१. तत्रापि भरते ज्येष्ठे खण्डेऽस्मिन् स्पृहलीयके ।
तन्नामा चैव विख्यातं खण्डं च भारतं तदा ।।
—शिव पुराण, अध्या० ५२

२९२. नाभि के पुत्र ऋषभ और उनके पुत्र भरत थे । भरत ने धर्मानुसार जिस वर्ष का शासन किया उनके नामानुसार वही भारतवर्ष कहलाया ।
—हिन्दी विश्वकोष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्पष्ट है कि "ऋषभपुत्र भरत चक्रवर्ती के नाम से ही प्रस्तुत देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। पाश्चात्य विद्वान् श्री जे० स्टीवेन्सन[२९३] का भी यही अभिमत है और प्रसिद्ध इतिहासज्ञ गंगाप्रसाद एम. ए.[२९४] व रामधारीसिंह दिनकर[२९५] का भी यही मन्तव्य है।

कुछ लोग दुष्यन्त पुत्र भरत से भारतवर्ष का नाम संस्थापित करना चाहते हैं पर प्रबल प्रमाणों के अभाव में उनकी बात किस प्रकार मान्य की जा सकती है। उन्हें अपने मताग्रह को छोड़कर यह सत्य तथ्य स्वीकार करना ही चाहिए कि श्री ऋषभ पुत्र भरत के नाम से ही भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ।

भरत को केवल ज्ञान

दीर्घकाल तक राज्यश्री का उपभोग करने के पश्चात् [भगवान् श्री ऋषभदेव के मोक्ष पधारने के बाद] एकबार सम्राट् भरत वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर आदर्श (काँच) के भव्य-भवन में गये। अँगुली से अँगूठी गिर गई, जिससे अँगुली असुन्दर प्रतीत हुई। भरत के मन में एक विचार आया। अन्य आभूषण भी उतार दिए। चिन्तन के आलोक में सोचा—पर-द्रव्यों से ही यह शरीर सुन्दर प्रतीत होता है। कृत्रिम सौन्दर्य वस्तुतः सही सौन्दर्य नहीं है। आत्म-

---

२९३. Brahmanical Puranas prove Rishabh to be the father of that Bharat, from whom India took to name "Bharatvarsha".

—Kalpasutra Introd. P. XVI

२९४. ऋषियों ने हमारे देश का नाम प्राचीन चक्रवर्ती सम्राट् भरत के नाम पर भारतवर्ष रखा था।

—प्राचीन भारत पृ० ५

२९५. भरत ऋषभदेव के ही पुत्र थे जिनके नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा।

—संस्कृति के चार अध्याय पृ० १२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सौन्दर्य ही सच्चा सौन्दर्य है। भावना का वेग बढ़ा, कर्म-मैल को धोकर वे केवल ज्ञानी बन गये।[२९६]

श्रीमद् भागवतकार ने सम्राट् भरत का जीवन कुछ अन्य रूप से चित्रित किया है। राजर्षि भरत सारी पृथ्वी का राज भोगकर वन में चले गये और वहाँ तपस्या के द्वारा भगवान् की उपासना की और तीन जन्मों में भगवत्स्थिति को प्राप्त हुए।[२९७]

जैन दृष्टि से भगवान् के सौ ही पुत्रों ने तथा ब्राह्मी सुन्दरी दोनों पुत्रियों ने श्रमणत्व स्वीकार किया और उत्कृष्ट साधना कर कैवल्य

---

२९६. आयंसघरपवेसो भरहे पडणं च अंगुलीअस्स।
सेसाणं उम्मुअणं संवेगो नाण दिक्खा य॥
—आवश्यक निर्युक्ति गा० ४३६

(ख) अह अन्नया कयाति सव्वालंकारविभूसितो आयंसघरं अतीति, तत्थ य सव्वंगिओ पुरिसो दीसति, तस्स एवं पेच्छमाणस्स अंगुलेज्जगं पडियं, तं च तेण ण णायं पडियं, एवं तस्स पलोएंतस्स जाहे तं अंगुलिं पलोएति जाव सा अंगुली न सोहति तेण अंगुलीज्जएण विणा, ताहे पेच्छति पडियं, ताहे कडगंपि अवणेति, एवं एक्केक्कं आभरणं अवणेतेण सव्वाणि अवणीताणि, ताहे अप्पाणं पेच्छति उच्चियपउमं व पउमसरं असोभमाणं पेच्छइ। पच्छा भणति—आगतुं एहि दव्वेहिं विभूसितं इमं सरीरगंति, एत्थं संवेगमावन्नो। इमं च एवं गतं सरीरं, एवं चिंतेमाणस्स ईहावूहा मग्गणगवेसणं करेमाणस्स अपुव्वकरणं झाणं अणुपविट्ठो केवलणाणं उप्पाडेति।
—आवश्यक चूर्णि, पृ० २२७

(ग) आवश्यक मलयगिरिवृत्ति पृ० २४६।

२९७. स भुक्तभोगां त्यक्त्वेमां निर्गतस्तपसा हरिम्।
उपासीनस्तत्पदवीं लेभे वै जन्मभिस्त्रिभिः॥
—भागवत ११।२।१८ पृ० ७११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्त किया।[२९८] श्रीमद्भागवत के अभिमतानुसार सौ पुत्रों में से कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस, और करभाजन—ये नौ आत्म विद्याविशारद पुत्र वातरशन श्रमण बने।[२९९]

भगवान के संघ में

भगवान् के आध्यात्मिक पावन प्रवचनों को श्रवण करके भगवान् के संघ में चौरासी हजार श्रमण बने।[३००] तीन लाख श्रमणियाँ बनीं,[३०१]

---

२९८. आवश्यक निर्युक्ति, गा० ३४८–३४९ मल० वृ० प० २३१–३२।

२९९. नवाभवन् महाभागा मुनयोह्यर्थशंसिनः।
श्रमणा वातरशना आत्मविद्याविशारदाः॥
कविर्हरिदन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः।
आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः॥
—भागवत ११।२।२०–२१

३००. (क) समवायाङ्ग ८४

(ख) आवश्यक नि० गा० २७८ मल० वृ० प० २०७

(ग) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति

(घ) उसभसेणपामोक्खाओ चउरासीइं समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था।
—कल्पसूत्र, सू० १९७ पृ० ५८

(ङ) त्रिषष्ठि० १।६।

३०१. बंभीसुन्दरिपामोक्खाणं अज्जियाणं तिन्नि सयसाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था।
—कल्पसूत्र सू० १९७ पृ० ५८

(ख) आवश्यक मल० वृ० प० २०८ गा० २८२

(ग) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, पृ० ८७ अमोल०

(घ) त्रिषष्ठि० १।६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीन लाख पाँच हजार श्रावक बने[३०२] और पाँच लाख चोपन हजार श्राविकाएँ हुईं।[३०३]

भगवान् ऋषभदेव के श्रमण चौरासी भागों में विभक्त थे। वे विभाग गण के नाम से पहचाने जाते थे। इन गणों का नेतृत्व करने वाले गणधर कहलाते थे, जिनकी संख्या चौरासी थी। श्रमण-श्रमणियों की सम्पूर्ण व्यवस्था इनके अधीन थी।

धार्मिक प्रवचन करना, अन्य तीर्थिक या अपने शिष्यों के प्रश्नों का समाधान करना और धार्मिक नियमोपनियम का परिज्ञान कराना—ये कार्य भ० ऋषभदेव के अधीन थे और शेष कार्य गणधरों के।

गुण की दृष्टि से श्री ऋषभदेव के श्रमणों को सात विभागों में विभक्त कर सकते हैं। (१) केवलज्ञानी, (२) मनःपर्यवज्ञानी (३) अवधिज्ञानी (४) वैक्रियर्द्धिक, (५) चतुर्दशपूर्वी (६) वादी (७) सामान्य साधु।

केवल ज्ञानी अथवा पूर्ण ज्ञानियों की संख्या बीस हजार थी।[३०४] ये प्रथम श्रेणी के ज्ञानी श्रमण थे। श्री ऋषभदेव के

---

३०२. (क) उसभस्स णं सेज्जंसपामोक्खाणं समणोवासगाणं तिन्नि सयसाहस्सीओ पंच सहस्सा उक्कोसिया समणोवासयसंपया होत्था।

—कल्पसूत्र० १९७। पृ० ५८

(ख) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति० पृ० ८७ अमो०

३०३. उसभस्स णं सुभद्दापामोक्खाणं समणोवासियाणं पंच सयसाहस्सीओ चउप्पन्नं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासिया....।

—कल्पसूत्र, सू० १९७ पृ० ५८, पुण्यवि० सं०

(ख) समवायाङ्ग।

(ग) लोकप्रकाश।

(घ) आवश्यक निर्युक्ति गा० २८८

३०४. उसभस्सणं वीससहस्सा केवलणाणीणं उक्कोसिया।

—कल्पसूत्र० सू० १९७ पृ० ५८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समान ही इनको भी पूर्ण ज्ञान था। ये धर्मोपदेश भी प्रदान करते थे।

दूसरी श्रेणी के श्रमण मनः पर्यवज्ञानी, अर्थात् मनोवैज्ञानिक थे। ये समनस्क प्राणियों के मानसिक भावों के परिज्ञाता थे। इनकी संख्या बारह हजार, छह सौ, पचास थी।[३०५]

तृतीय श्रेणी के श्रमण अवधिज्ञानी थे। अवधि का अर्थ–सीमा है। अधिज्ञान का विषय केवल रूपी पदार्थ हैं। जो रूप, रस, गंध, और स्पर्श युक्त समस्त रूपी पदार्थों (पुद्गलों) के परिज्ञाता थे। इनकी संख्या नौ हजार थी।[३०६]

चतुर्थ श्रेणी के साधक वैक्रियर्द्धिक थे। अर्थात् योगसिद्धि प्राप्त श्रमण थे। जो प्रायः तप जप व ध्यान में तल्लीन रहते थे। इन श्रमणों की संख्या बीस हजार छह सौ थी।[३०७]

पंचम श्रेणी के श्रमण चतुर्दश पूर्वी थे। ये सम्पूर्ण अक्षर ज्ञान में

(ख) समवायाङ्ग,
(ग) लोकप्रकाश,

३०५. उसभस्स णं० बारससहस्सा छच्च सया पन्नासा विउलमईणं अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु सन्नीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तगाणं मणोगए भावे जाणमाणाणं पासमाणाणं उक्कोसिया विपुलमइसंपया होत्था।
—कल्पसूत्र० सू० १९७, पृ० ५८–५९

(ख) समवायाङ्ग

३०६. उसभस्स णं० नव सहस्सा ओहिनाणीणं उक्को०।
—कल्प० सू० १९७, पृ० ५८

(ख) समवायाङ्ग।
(ग) लोकप्रकाश।

३०७. उसभस्स णं० वीससहस्सा छच्च सया वेउव्वियाणं उक्कोसिया।
—कल्पसूत्र–सू० ५८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पारंगत थे। इनका कार्य था शिष्यों को शास्त्राभ्यास कराना। इनकी संख्या सैंतालीस सौ पचास थी।[३०८]

छट्ठी श्रेणी के श्रमण वादी थे। ये तर्क और दार्शनिक सिद्धान्तों की चर्चा करने में प्रवीण थे। अन्य तीर्थियों के साथ शास्त्रार्थ कर उन्हें आर्हत धर्म के अनुकूल बनाना, इनका प्रमुख कार्य था। इनकी संख्या बारह हजार छह सौ पचास थी।[३०९]

सातवीं श्रेणी में वे सामान्य श्रमण थे जो अध्ययन, तप, ध्यान तथा सेवा-शुश्रूषा किया करते थे।

इस प्रकार श्री ऋषभदेव की संघ-व्यवस्था सुगठित और वैज्ञानिक थी। धार्मिक राज्य की सुव्यवस्था करने में वे सर्वतंत्र-स्वतंत्र थे। लक्षाधिक व्यक्ति उनके अनुयायी थे और उनका उन पर अखण्ड प्रभुत्व था।

भगवान् श्री ऋषभदेव सर्वज्ञ होने के पश्चात् जीवन के सान्ध्य तक आर्यावर्त में पैदल घूम-घूमकर आत्म-विद्या की अखण्ड ज्योति जगाते रहे। देशना रूपी जल से जगत् की दुःखाग्नि को शमन करते रहे।[३१०] जन-जन के अन्तर्मानस में त्याग–निष्ठा व संयम-प्रतिष्ठा उत्पन्न करते रहे।

निर्वाण

तृतीय आरे के तीन वर्ष और साढ़े आठ मास अवशेष रहने पर भगवान् दस सहस्र श्रमणों के साथ अष्टापद पर्वत पर आरूढ़ हुए।

---

३०८. उसभस्स णं० चत्तारि सहस्सा सत्त सया पन्नासा चोद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं उक्कोसिया चोद्दसपुव्विसंपया होत्था।

—कल्पसूत्र सू० १९७ पृ० ५८

३०९. उसभस्स णं बारस सहस्सा छच्च सया पन्नासा वाईणं०

—कल्पसूत्र १९५,१५९

३१०. वर्षति सिंचति देशनाजलेन,
दुःखाग्निना दग्धं जगदिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्दश भक्त से आत्मा को तापित करते हुए अभिजित नक्षत्र के योग में, पर्यङ्कासन में स्थित, शुक्ल ध्यान के द्वारा वेदनीय कर्म, आयुष्य कर्म, नाम कर्म और गोत्र-कर्म को नष्ट कर सदा-सर्वदा के लिए अक्षर अजर अमर पद को प्राप्त हुए।[३११] जैन परिभाषा में इसे निर्वाण या

---

३११. चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता, खीणे वेयणिज्जाउयनामगोत्ते, इमीसे ओसप्पिणीए सुसमदूसमाए समाए बहुविइक्कंताए तिहिं वासेहिं अद्धनवमेहि य मासेहिं सेसेहिं·····उप्पिं अट्ठावयसेलसिहरंसि दसहिं अणगारसहस्सेहिं सद्धिं चोद्दसमेणं भत्तेणं अप्पाणएणं अभिइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पुव्वण्हकालसमयंसि संपलियंकनिसन्ने कालगए विइक्कंते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

—कल्पसूत्र, सू० १९९, पृ० ५९

(ख) निव्वाणमंतकिरिया सा चोद्दसमेण पढमनाहस्स।
सेसाण मासिएणं वीरजिणिंदस्स छट्ठेणं॥
अट्ठावय-चंपु-ज्जेंत-पावा-सम्मेयसेलसिहरेसु।
उसभ वसुपुज्ज नेमी वीरो सेसा य सिद्धिगया॥

—आवश्यक निर्युक्ति० गा० ३२८-३२९

दसहिं सहस्सेहुसभे सेसा उ सहस्सपरिवुडा सिद्धा।

—आवश्यक नि० गा० ३३३

(ग) एवं च सामी विहरमाणो थोवणगं पुव्वसयसहस्सं केवलपरियायं पाउणित्ता पुणरवि अट्ठावए पव्वए समोसढो, तत्थ चोद्दसमेण भत्तेण पाओवगतो, तत्थ माहबहुलतेरसीपक्खेणं दसहिं अणगारसहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे संपलियंकणिसन्नो पुव्वण्हकाल-समयंसि अभिइणा णक्खत्तेणं सुसमदूसमाए एगूणणउतीहिं पक्खेहिं सेसेहिं खीणे आउगे णामे गोत्ते वेयणिज्जे कालगते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

चुलसीतीए जिणवरो,
समणसहस्सेहिं परिवुडो भगवं।
दसहिं सहस्सेहिं समं,
निव्वाणमणुत्तरं पत्तो॥

—आवश्यक चूर्णि पृ० २२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिनिर्वाण कहा है। शिव पुराण ने अष्टा पद पर्वत के स्थान पर कैलाश पर्वत का उल्लेख किया है।[३१२]

भगवान् श्री ऋषभदेव की निर्वाणतिथि जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति,[३१३] कल्पसूत्र,[३१४] त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र[३१५] के अनुसार माघ कृष्णा

(घ) दीक्षाकालात् पूर्वलक्षं, क्षपयित्वा ततः प्रभुः।
ज्ञात्वा स्वमोक्षकालं च, प्रतस्थेऽष्टापदं प्रति॥
शैलमष्टापदं प्राप, क्रमेण सपरिच्छदः।
निर्वाणसौधसोपानमिवाऽऽरोहच्च तं प्रभुः॥
समं मुनीनां दशभिः सहस्रैः प्रत्यपद्यत।
चतुर्दशेन तपसा, पादपोपगमं प्रभुः॥

—त्रिषष्ठि० १।६।४५६ से ४६१

(ङ) दसहिं अणगारसहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे अट्ठावयसेलसिहरंसि चोद्दसमेणं भत्तेणं अप्पाएएणं संपलिअंकासणे निसण्णे पुव्वण्ह कालसमयंसि अभिइणा णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं सुसमदुस्समाए एगूणणवइए पक्खेहिं सेसेहिं कालगए वीइक्कंते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सू० ४८ पृ० ६१

३१२. कैलाशे पर्वते रम्ये,
वृषभोऽयं जिनेश्वरः।
चकार स्वावतारं च
सर्वज्ञः सर्वगः शिवः॥

—शिवपुराण ५६

३१३. जे से हेमंताणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे माहबहुले तस्स णं माहबहुलस्स तेरसीपक्खेणं।

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, सू० ४८, पृ० ६१

३१४. जे से हेमंताणं तच्चेमासे पंचमे पक्खे माहबहुले तस्स णं माहबहुलस्स तेरसीपक्खेणं।

—कल्पसूत्र, सू० १६६, पृ० ५६

३१५. त्रिषष्ठि० १।६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रयोदशी है और तिलोय पण्णत्ति[३१६] व महापुराण[३१७] के अनुसार माघकृष्णा चतुर्दशी है।

विज्ञों का मन्तव्य है कि उस दिन श्रमणों ने शिवगति प्राप्त भगवान् की संस्मृति में दिन में उपवास रखा और रात्रि भर धर्म जागरण किया। अतः वह तिथि शिवरात्रि के नाम से प्रसिद्ध हुई। 'शिव', मोक्ष, 'निर्वाण'—ये सभी पर्यायवाची शब्द हैं।

ईशान संहिता में लिखा है कि माघ कृष्णा चतुर्दशी की महानिशा में कोटिसूर्यप्रभोपम भगवान् आदिदेव शिवगति प्राप्त हो जाने से शिव—इस लिंग से प्रकट हुए। जो निर्वाण के पूर्व आदिदेव कहे जाते थे वे अब शिवपद प्राप्त हो जाने से "शिव" कहलाने लगे।[३१८]

उत्तर प्रान्त में शिव-रात्रि पर्व फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी को मनाया जाता है तो दक्षिण प्रान्त में माघकृष्णा चतुर्दशी को। इस भेद का कारण यह है कि उत्तर प्रान्त में मास का प्रारम्भ कृष्ण पक्ष से मानते हैं और दक्षिण प्रान्त में शुक्ल पक्ष से। इस दृष्टि से दक्षिण प्रान्तीय माघ कृष्णा चतुर्दशी उत्तर प्रान्त में फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी हो जाती है। कालमाधवीय नागर खण्ड में प्रस्तुत मासवैषम्य का समन्वय करते हुए स्पष्ट लिखा है कि दाक्षिणात्य मानव के माघ मास

---

३१६. माघस्स किण्हि चोद्दसि पुव्वण्हे णिययजम्मणक्खत्ते अट्ठावयम्मि उसहो अजुदेण समं गओज्जोमि।

—तिलोयपण्णत्ति

३१७. .....घणतुहिणकणाउलि माहमासि सूरुग्गमिकसणचउद्दसीहि णिव्वुइ तित्थंकरि पुरिससीहि।

—महापुराण ३७।३

३१८. माघे कृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि।
शिवलिंगतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः॥
तत्कालव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिव्रते तिथिः।

—ईशान संहिता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के शेष अथवा अन्तिम पक्ष की, और उत्तर प्रान्तीय मानव के फाल्गुन के प्रथम मास की कृष्णा चतुर्दशी शिवरात्रि कही गई है।[३१९]

पूर्व बताया जा चुका है कि ऋषभदेव का महत्त्व केवल श्रमण परम्परा में ही नहीं अपितु ब्राह्मणपरम्परा में भी रहा है। वहाँ उन्हें आराध्यदेव मानकर मुक्त कंठ से गुणानुवाद किया गया है। सुप्रसिद्ध वैदिक साहित्य के विद्वान् प्रो० विरुपाक्ष एम. ए. वेदतीर्थ और आचार्य विनोबा भावे जैसे बहुश्रुत विचारक ऋग्वेद आदि में ऋषभदेव की स्तुति के स्वर सुनते हैं।+

श्री रामधारीसिंह दिनकर भ० श्री ऋषभदेव के सम्बन्ध में लिखते हैं—"मोहन जोदड़ो" की खुदाई में योग के प्रमाण मिले हैं। और जैनमार्ग के आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव थे, जिनके साथ योग और वैराग्य की परम्परा उसी प्रकार लिपटी हुई है जैसे कालान्तर में शिव के साथ समन्वित हो गई। इस दृष्टि से कई जैन विद्वानों का यह मानना अयुक्तियुक्त नहीं दिखता कि ऋषभदेव वेदोल्लिखित होने पर भी वेद पूर्व हैं।❀

डाक्टर जिम्मर लिखते हैं—"आज प्राग् ऐतिहासिक काल के महापुरुषों के अस्तित्व को सिद्ध करने के साधन उपलब्ध नहीं हैं, इसका अर्थ यह नहीं कि वे महापुरुष हुए ही नहीं। इस अवसर्पिणी काल में भोग-भूमि के अन्त में अर्थात् पाषाणकाल के अवसान पर कृषिकाल के प्रारम्भ में पहले तीर्थङ्कर ऋषभ हुए। जिन्होंने मानव को सभ्यता का पाठ पढ़ाया, उनके पश्चात् और भी तीर्थङ्कर हुए,

---

३१९. माघमासस्य शेषे या प्रथमे फाल्गुणस्य च ।
कृष्णा चतुर्दशी सा तु शिवरात्रिः प्रकीर्तिता ॥
—कालमाधवीय नागर खण्ड

\+ पूर्व इतिवृत्त—उपाध्याय अमरमुनिजी महाराज, गुरुदेव श्री रत्नमुनि।

❀ आजकल, मार्च १९६२ पृ० ८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनमें से कई का उल्लेख वेदादि ग्रन्थों में भी मिलता है। अतः जैन धर्म भगवान् ऋषभदेव के काल से चला आ रहा है।×

ऋग्वेद में भगवान् श्री ऋषभ को पूर्वज्ञान का प्रतिपादक और दुःखों का नाश करने वाला बतलाते हुए कहा है—"जैसे जल से भरा मेघ वर्षा का मुख्य स्रोत है, जो पृथ्वी की प्यास को बुझा देता है, उसी प्रकार पूर्वी ज्ञान के प्रतिपादक वृषभ [ऋषभ] महान् हैं, उनका शासन वर दे। उनके शासन में ऋषि परम्परा से प्राप्त पूर्व का ज्ञान आत्मा के शत्रुओं—क्रोधादि का विध्वंसक हो। दोनों [संसारी और मुक्त] आत्माएँ अपने ही आत्मगुणों से चमकती हैं। अतः वे राजा हैं—वे पूर्ण ज्ञान के आगार हैं और आत्म-पतन नहीं होने देते।"[३२०]

वैदिक ऋषि भक्ति-भावना से विभोर होकर उस महाप्रभु की स्तुति करता हुआ कहता है—हे आत्मद्रष्टा प्रभो! परम सुख पाने के लिए मैं तेरी शरण में आना चाहता हूँ। क्योंकि तेरा उपदेश और तेरी वाणी शक्तिशाली है—उनको मैं अवधारण करता हूँ। हे प्रभो! सभी मनुष्यों और देवों में तुम्हीं पहले पूर्वयाया [पूर्वगत ज्ञान के प्रतिपादक] हो।[३२१]

× दी फिलॉसफीज ऑव इण्डिया, पृ० २१७ डा० जिम्मर।

(ख) अहिंसावाणी वर्ष १२ अंक ९, पृ० ३७९, डाक्टर कामताप्रसाद *के लेख में भी उद्धृत।*

३२०. असूतपूर्वा वृषभो ज्यायनिमा अरय शुरुधः सन्ति पूर्वीः।
दिवो न पाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवोदधाथे॥

—ऋग्वेद ५२–३८

३२१. मखस्य ते तीवषस्य प्रजूतिमियंभि वाचमृताय भूषन्।
इन्द्र क्षितीमामास मानुषीणां विशां दैवी नामुत *पूर्वयाया*॥

—ऋग्वेद २।३४।२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"आत्मा ही परमात्मा है"[३२२]—यह जैन दर्शन का मूल सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को ऋग्वेद के शब्दों में भगवान् श्री ऋषभदेव ने इस रूप में प्रतिपादित किया—"मन, वचन, काय तीनों योगों से बद्ध [संयत] वृषभ ने घोषणा की कि महादेव अर्थात् परमात्मा मर्त्यों में निवास करता है।"[३२३] उन्होंने स्वयं कठोर तपश्चरणरूप साधना कर वह आदर्श जन-नयन के समक्ष प्रस्तुत किया। एतदर्थ ही ऋग्वेद के मेधावी महर्षि ने लिखा कि—"ऋषभ स्वयं आदिपुरुष थे जिन्होंने सब से प्रथम मर्त्यदशा में देवत्त्व की प्राप्ति की थी।"[३२४]

अथर्ववेद का ऋषि मानवों को ऋषभदेव का आह्वान करने के लिए यह प्रेरणा करता है कि—"पापों से मुक्त पूजनीय देवताओं में सर्व प्रथम तथा भवसागर के पोत को मैं हृदय से आह्वान करता हूँ। हे सहचर बन्धुओ! तुम आत्मीय श्रद्धा द्वारा उसके आत्मबल और तेज को धारण करो।[३२५] क्योंकि वे प्रेम के राजा हैं उन्होंने

---

३२२. जे अप्पा से परमप्पा।

(ख) मग्गण-गुणठाणेहि य,
चउदसहि तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी,
सव्वे सुद्धा हु सुद्धनया॥

—द्रव्यसंग्रह १।१३

(ग) सदामुक्तं·····कारणपरमात्मानं जानाति।

—नियमसार, तात्पर्यवृत्ति गा० ६६

३२३. त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीती।
महादेवो मर्त्यां आविवेश॥

—ऋग्वेद ४।५८।३

३२४. तन्मर्त्यस्य देवत्वसजातमग्रः।

—ऋग्वेद ३१।१७

३२५. अहो मुचं वृषभं यज्ञियानं विराजन्तं प्रथममध्वराणाम्।
अपां न पातमश्विनां हुवे धिय इन्द्रियेण तमिन्द्रियं दत्तभोजः॥

—अथर्ववेद कारिका १६।४२।४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस संघ की स्थापना की है जिसमें पशु भी मानव के समान माने जाते थे और उनको कोई भी मार नहीं सकता था।[३२६]

श्रीमद्भागवत के अनुसार श्री ऋषभ का जन्म रजोगुणी जनों को कैवल्य की शिक्षा देने के लिए हुआ था।[३२७] जिन्होंने विषयभोगों की अभिलाषा करने के कारण अपने वास्तविक श्रेय से भूले-बिसरे मानवों को करुणावश निर्भय आत्म-लोक का उपदेश दिया और जो स्वयं निरन्तर अनुभव करने वाले आत्म-स्वरूप की प्राप्ति के द्वारा सब प्रकार की तृष्णा से मुक्त थे, उन भगवान् श्री ऋषभदेव को नमस्कार है।[३२८]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भागवत में ही नहीं, किन्तु कूर्म पुराण, मार्कण्डेय पुराण, अग्नि पुराण आदि वैदिक ग्रन्थों में उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण गाथाएँ उट्टङ्कित हैं।

बौद्ध ग्रन्थ "आर्य मंजुश्री मूलकल्प" में भारत के आदि सम्राट्‌ों में नाभिपुत्र ऋषभ और ऋषभ पुत्र भरत की गणना की गई है। उन्होंने हिमालय से सिद्धि प्राप्त की[३२९], वे व्रतों को पालने में दृढ़

---

३२६. नास्य पशून् समानान् हिनस्ति।

—अथर्ववेद

३२७. अयमवतारो रजसोपप्लुतकैवल्योपशिक्षणार्थम्।

—श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध, अध्या० ६

३२८. नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः.
श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः।
लोकस्य यः करुणयाभयमात्मलोक-
माख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै॥

—श्रीमद् भागवत ५।६।१९।५६९

३२९. जैन दृष्टि से सिद्धि-स्थल अष्टापद है, हिमालय नहीं।

—लेखक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थे। वे ही निर्ग्रन्थ तीर्थङ्कर ऋषभ जैनों के आप्तदेव थे।[330] धम्म पद में ऋषभ को सर्वश्रेष्ठ वीर कहा है।[331]

भारत के अतिरिक्त बाह्य देशों में भी भगवान् ऋषभदेव का विराट् व्यक्तित्व विविध रूपों में चमका है। प्रथम उन्होंने कृषिकला का परिज्ञान कराया, अतः वे "कृषि देवता" हैं। आधुनिक विद्वान् उन्हें "एग्रीकल्चरएज" मानते हैं।[332] देशनारूपी वर्षा करने से वे "वर्षा के देवता" कहे गये हैं। केवल ज्ञानी होने से सूर्यदेव के रूप में मान्य हैं।

इस प्रकार भगवान् श्री ऋषभदेव का जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व विश्व के कोटि-कोटि मानवों के लिए कल्याणरूप, मंगलरूप और वरदानरूप रहा है। वे श्रमण संस्कृति और ब्राह्मण संस्कृति के आदि पुरुष हैं। भारतीय संस्कृति के ही नहीं, मानव संस्कृति के आद्य निर्माता हैं। उनके हिमालयसदृश विराट् जीवन पर दृष्टि डालते-डालते मानव का सिर ऊँचा हो जाता है और अन्तर भाव श्रद्धा से झुक जाता है।

---

३३०. प्रजापतेः सुतो नाभि तस्यापि आगमुच्यति ।
नाभिनो ऋषभपुत्रो वै सिद्धकर्म दृढ़वतः ॥
तस्यापि मणिचरो यक्षः सिद्धौ हेमवेत गिरो ।
ऋषभस्य भरतः पुत्रः सोऽपि मंजतान तदा जपेत ॥
निर्ग्रन्थ तीर्थङ्कर ऋषभ निर्ग्रन्थ रूपि
आर्यमंजु श्री मूलकल्प श्लो० ३६०–३६१–३६२

३३१. उसभं पवरं वीरं ।
—धम्मपद ४२२

३३२. व्हायस ऑव अहिंसा—भ० ऋषभ विशेषाङ्क, ले० डा० सांकलिया आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ, द्वितीय खण्ड पृ० ४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदिमं पृथ्वीनाथम्,
आदिमं निष्परिग्रहम् ।
आदिमं तीर्थनाथ च,
ऋषभस्वामिनं स्तुमः ॥

—आचार्य हेमचन्द्र

आदिपुरुष आदीश जिन,
आदि सुबुद्धि करतार ।
धर्मधुरंधर परम गुरु,
नमो आदि अवतार ॥

—पाण्डे हेमराज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट | १

बहत्तर कलाओं के नाम

१. लेहं—लेख लिखने की कला।
२. गणियं—गणित ।
३. रूवं—रूप सजाने की कला।
४. नट्टं—नाट्य करने की कला।
५. गीयं—गीत गाने की कला।
६. वाइयं—वाद्य बजाने की कला।
७. सरगयं—स्वर जानने की कला।
८. पुक्खरयं—ढोल आदि वाद्य बजाने की कला।
९. समतालं—ताल देना।
१०. जूयं—जूआ खेलने की कला।
११. जणवायं—वार्तालाप की कला।
१२. पोक्खच्चं—नगर के संरक्षण की कला।
१३. अट्ठावयं—पासा खेलने की कला।
१४. दगमट्टियं—पानी और मिट्टी के संमिश्रण से वस्तु बनाने की कला
१५. अन्नविहिं—अन्न उत्पन्न करने की कला।
१६. पाणविहिं—पानी उत्पन्न करना, और उसे शुद्ध करने की कला।
१७. वत्थविहिं—वस्त्र बनाने की कला।
१८. सयणविहिं—शय्या निर्माण करने की कला।
१९. अज्जं—संस्कृत भाषा में कविता निर्माण की कला।
२०. पहेलियं—प्रहेलिका निर्माण की कला।
२१. मागहियं—छन्द विशेष बनाने की कला।
२२. गाहं—प्राकृत भाषा में गाथा निर्माण की कला।
२३. सिलोगं—श्लोक बनाने की कला।
२४. गंध जुत्ति—सुगन्धित पदार्थ बनाने की कला।
२५. मधुसित्थं— मधुरादि छह रस बनाने की कला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६. आभरणविहिं—अलंकार निर्माण की तथा धारण की कला।
२७. तरुणीपडिकम्मं—स्त्री को शिक्षा देने की कला।
२८. इत्थीलक्खणं—स्त्री के लक्षण जानने की कला।
२९. पुरिसलक्खणं—पुरुष के लक्षण जानने की कला।
३०. हयलक्खणं—घोड़े के लक्षण जानने की कला।
३१. गयलक्खणं—हस्ती के लक्षण जानने की कला।
३२. गोलक्खणं—गाय के लक्षण जानने की कला।
३३. कुक्कुडलक्खणं—कुक्कुट के लक्षण जानने की कला।
३४. मिंढयलक्खणं—मेंढ़े के लक्षण जानने की कला।
३५. चक्कलक्खणं—चक्र-लक्षण जानने की कला।
३६. छत्तलक्खणं—छत्र-लक्षण जानने की कला।
३७. दण्डलक्खणं—दण्ड लक्षण जानने की कला।
३८. असिलक्खणं—तलवार के लक्षण जानने की कला।
३९. मणिलक्खणं—मणि-लक्षण जानने की कला।
४०. कागणिलक्खणं—काकिणी-चक्रवर्ती के रत्नविशेष के लक्षण को जानने की कला।
४१. चम्मलक्खणं—चर्म-लक्षण जानने की कला।
४२. चंदलक्खणं—चन्द्र लक्षण जानने की कला।
४३. सूरचरियं—सूर्य आदि की गति जानने की कला।
४४. राहुचरियं—राहु आदि की गति जानने की कला।
४५. गहचरियं—ग्रहों की गति जानने की कला।
४६. सोभागकरं—सौभाग्य का ज्ञान।
४७. दोभागकरं—दुर्भाग्य का ज्ञान।
४८. विज्जागयं—रोहिणी, प्रज्ञप्ति आदि विद्या सम्बन्धी ज्ञान।
४९. मंतगयं—मन्त्र साधना आदि का ज्ञान।
५०. रहस्सगयं—गुप्त वस्तु को जानने का ज्ञान।
५१. सभासं—प्रत्येक वस्तु के वृत्त का ज्ञान।
५२. चारं—सैन्य का प्रमाण आदि जानना।
५३. पडिचारं—सेना को रणक्षेत्र में उतारने की कला।
५४. वूहं—व्यूह रचने की कला।
५५. पडिवूहं—प्रतिव्यूह रचने की कला (व्यूह के सामने उसे पराजित करने वाले व्यूह की रचना)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६. खंधावारमाणं— सेना के पड़ाव का प्रमाण जानना ।
५७. नगरमाणं— नगर का प्रमाण जानने की कला ।
५८. वत्थुमाणं—वस्तु का प्रमाण जानने की कला ।
५९. खंधावारनिवेसं—सेना का पड़ाव आदि कहाँ डालना इत्यादि का परिज्ञान ।
६०. वत्थुनिवेसं—प्रत्येक वस्तु के स्थापन कराने की कला ।
६१. नगरनिवेसं—नगर निर्माण का ज्ञान ।
६२. ईसत्थं—ईषत् को महत् करने की कला ।
६३. छरुप्पवायं - तलवार आदि की मूठ आदि बनाने की कला ।
६४. आससिक्खं—अश्व-शिक्षा ।
६५. हत्थिसिक्खं—हस्ती-शिक्षा ।
६६. धणुवेयं - धनुर्वेद ।
६७. हिरण्णपागं, सुवण्णपागं, मणिपागं, धातुपागं—हिरण्यपाक, सुवर्णपाक, मणिपाक, धातुपाक बनाने की कला ।
६८. बाहुजुद्धं, दंडजुद्धं, मुट्ठिजुद्धं, अट्ठिजुद्धं, जुद्धं, निजुद्धं, जुद्धाइजुद्धं— बाहु युद्ध, दण्ड युद्ध, मुष्टि युद्ध, यष्टि युद्ध, युद्ध, नियुद्ध, युद्धातियुद्ध करने की कला ।
६९. सुत्ताखेडं, नालियाखेडं, वट्टखेडं, धम्मखेडं, चम्मखेडं—सूत बनाने की, नली बनाने की, गेंद खेलने की, वस्तु के स्वभाव जानने की, चमड़ा बनाने आदि की कलाएँ ।
७०. पत्तच्छेज्जं—कडगच्छेज्जं=पत्र-छेदन, वृक्षाङ्गविशेष छेदने की कला ।
७१. सजीवं, निज्जीवं—संजीवन, निर्जीवन ।
७२. सउणरुयं— पक्षी के शब्द से शुभाशुभ जानने की कला ।

(क) समवायाङ्ग सूत्र समवाय ७२
(ख) नायाधम्मकहा पृ० २१
(ग) राजप्रश्नीय सूत्र पत्र ३४०
(घ) औपपातिक सूत्र ४०, पत्र० १८५
(ङ) कल्पसूत्र सुबोधिका टीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट | २

चौंसठ कलाओं के नाम

१. नृत्य
२. औचित्य
३. चित्र
४. वादित्र
५. मंत्र
६. तन्त्र
७. ज्ञान
८. विज्ञान
९. दम्भ
१०. जलस्तम्भ
११. गीतमान
१२. तालमान
१३. मेघवृष्टि
१४. फलाकृष्टि
१५. आरामरोपण
१६. आकारगोपन
१७. धर्मविचार
१८. शकुनसार
१९. क्रियाकल्प
२०. संस्कृत जल्प
२१. प्रासाद नीति
२२. धर्मरीति
२३. वर्णिकावृद्धि
२४. सुवर्णसिद्धि
२५. सुरभितैलकरण
२६. लीलासंचरण
२७. हयगज परीक्षण
२८. पुरुष स्त्रीलक्षण
२९. हेमरत्न भेद
३०. अष्टादश लिपि-परिच्छेद
३१. तत्कालबुद्धि
३२. वस्तुसिद्धि
३३. कामविक्रिया
३४. वैद्यक क्रिया
३५. कुम्भभ्रम
३६. सारिश्रम
३७. अंजनयोग
३८. चूर्णयोग
३९. हस्तलाघव
४०. वचनपाटव
४१. भोज्यविधि
४२. वाणिज्यविधि
४३. मुखमण्डन
४४. शालिखण्डन
४५. कथाकथन
४६. पुष्पग्रन्थन
४७. वक्रोक्ति
४८. काव्य शक्ति
४९. स्फारविधिवेष
५०. सर्वभाषाविशेष
५१. अभिधानज्ञान
५२. भूषणपरिधान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३.	भृत्योपचार	५९.	वीणानाद
५४.	गृहाचार	६०.	वितण्डावाद
५५.	व्याकरण	६१.	अङ्कविचार
५६.	परनिराकरण	६२.	लोकव्यवहार
५७.	रन्धन	६३.	अन्त्याक्षरिका
५८.	केशबन्धन	६४.	प्रश्नप्रहेलिका

—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्षस्कार २, टीका पत्र १३९–२, १४०–१

—कल्पसूत्र सुबोधिका टीका ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट | ३

श्री ऋषभदेव के पुत्र और पुत्रियों के नाम

१. भरत
२. बाहुबली
३. शङ्ख
४. विश्वकर्मा
५. विमल
६. सुलक्षण,
७. अमल
८. चित्राङ्ग
९. ख्यातकीर्ति
१०. वरदत्त
११. दत्त
१२. सागर
१३. यशोधर
१४. अवर
१५. थवर
१६. कामदेव
१७. ध्रुव
१८. वत्स
१९. नन्द
२०. सूर
२१. सुनन्द
२२. कुरु
२३. अंग
२४. वंग
२५. कोसल
२६. वीर
२७. कलिंग
२८. मागध
२९. विदेह
३०. संगम
३१. दशार्ण
३२. गम्भीर
३३. वसुवर्मा
३४. सुवर्मा
३५. राष्ट्र
३६. सुराष्ट्र
३७. बुद्धिकर
३८. विविधकर
३९. सुयश
४०. यशः कीर्ति
४१. यशस्कर
४२. कीर्तिकर
४३. सुषेण
४४. ब्रह्मसेण
४५. विक्रान्त
४६. नरोत्तम
४७. चन्द्रसेन
४८. महसेन
४९. सुसेण
५०. भानु
५१. कान्त
५२. पुष्पयुत
५३. श्रीधर
५४. दुर्द्धर्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५५.	सुसुमार	७८.	वसु
५६.	दुर्जय	७९.	सेन
५७.	अजयमान	८०.	कपिल
५८.	सुधर्मा	८१.	शैलविचारी
५९.	धर्मसेन	८२.	अरिञ्जय
६०.	आनन्दन	८३.	कुञ्जरबल
६१.	आनन्द	८४.	जयदेव
६२.	नन्द	८५.	नागदत्त
६३.	अपराजित	८६.	काश्यप
६४.	विश्वसेन	८७.	बल
६५.	हरिषेण	८८.	वीर
६६.	जय	८९.	शुभमति
६७.	विजय	९०.	सुमति
६८.	विजयन्त	९१.	पद्मनाभ
६९.	प्रभाकर	९२.	सिंह
७०.	अरिदमन	९३.	सुजाति
७१.	मान	९४.	सञ्जय
७२.	महाबाहु	९५.	सुनाम
७३.	दीर्घबाहु	९६.	नरदेव
७४.	मेघ	९७.	चित्तहर
७५.	सुघोष	९८.	सुखर
७६.	विश्व	९९.	दृढरथ
७७.	वराह	१००.	प्रभञ्जन+

दिगम्बर परम्परा के आचार्य जिनसेन ने १०१ पुत्र माने हैं और उसका नाम वृषभसेन दिया है।❀

पुत्रियों के नाम—

१—ब्राह्मी।

२—सुन्दरी।

+ (क) कल्पसूत्र किरणावली पत्र १५१–५२

(ख) कल्पसूत्र सुबोधिका टीका व्याख्यान ७ पृ० ४९८

❀ महापुराण पर्व १६, पृ० ३४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट | ४

ग्रन्थ के टिप्पण में प्रयुक्त ग्रन्थों के नाम

१. आचाराङ्ग सूत्र
२. आवश्यक निर्युक्ति—आचार्य भद्रबाहु
३. आवश्यक चूर्णि—जिनदासगणी महत्तर
४. आवश्यक निर्युक्ति—मलयगिरि वृत्ति
५. आवश्यक भाष्य
६. आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति
७. आदि पुराण
८. अथर्ववेद
९. अथर्व संहिता
१०. उत्तराध्ययन सूत्र
११. उत्तर पुराण
१२. ऋग्वेद
१३. आर्य मंजुश्री मूलकल्प
१४. अग्निपुराण
१५. औपपातिक सूत्र
१६. आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ कलकत्ता
१७. अष्टाध्यायी पाणिनि
१८. ईशान संहिता
१९. कल्पसूत्र—आचार्य भद्रबाहु, पं० प्र० पुण्यविजय जी द्वारा सम्पादित
२०. कल्पसूत्र—कल्पार्थबोधिनी
२१. कल्पसूत्र—कल्पसुबोधिका टीका—उपाध्याय विनय विजय जी
२२. कल्पसूत्र कल्पलता टीका—समय सुन्दर जी
२३. कल्पसूत्र-कल्पद्रुम कलिका—लक्ष्मीवल्लभ
२४. कल्पसूत्र-कल्पसूत्रार्थ प्रबोधिनी—राजेन्द्र सूरि
२५. कल्पसूत्र—मणिसागर
२६. कूर्मपुराण
२७. काललोक प्रकाश
२८. कालिमाधवीय नागर खण्ड

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९. चतुर्विंशतिस्तव
३०. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
३१. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति—टीका
३२. जैन रामायण— केशराज जी
३३. तत्त्वार्थभाष्य
३४. द्रव्य संग्रह
३५. चर्पट पंजरिका—आचार्य शंकर
३६. दशवैकालिक चूर्णि—अगस्त्यसिंह चूर्णि
३७. दशवैकालिक चूर्णि—जिनदासगणी महत्तर
३८. धनञ्जय नाममाला
३९. नारद पुराण
४०. त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र—आचार्य हेमचन्द्र
४१. त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र (गुजराती भाषान्तर)
४२. वायु पुराण
४३. ब्रह्माण्ड पुराण
४४. वाराह पुराण
४५. स्कन्ध पुराण
४६. स्थानाङ्ग
४७. स्थानाङ्गवृत्ति
४८. समवायाङ्ग
४९. पउमचरियं—विमल सूरि
५०. महापुराण—आचार्य जिनसेन, भारतीय ज्ञानपीठ काशी
५१. सिद्धान्त संग्रह
५२. मनुस्मृति
५३. सेनप्रश्न
५४. बुद्धचर्या
५५. ललित विस्तर
५६. भगवती सूत्र
५७. श्रीमद्भागवत
५८. नन्दीसूत्र
५९. श्रमणसूत्र
६०. बृहत्स्वयम्भू स्तोत्र—आचार्य समन्तभद्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६१. शिवपुराण
६२. प्रभास पुराण
६३. मुनि श्री हजारीमल स्मृतिग्रन्थ—ब्यावर
६४. पुराणसार संग्रह—आचार्य दामनन्दी
६५. विशेषावश्यक भाष्यवृत्ति
६६. हिन्दी विश्वकोष—श्री नगेन्द्रनाथ वसु
६७. ऋग्वेद संहिता
६८. शुक्ल यजुर्वेद संहिता
६९. महाभारत
७०. भविष्य पुराण
७१. लोक प्रकाश
७२. प्रश्न व्याकरण
७३. तत्त्वार्थ सूत्र
७४. वायु महापुराण
७५. मुण्डकोपनिषद्
७६. महावीर चरियं—गुणचन्द्राचार्य
७७. महावीर पुराण—आचार्य सकलकीर्ति
७८. उत्तर पुराण—गुणभद्राचार्य
७९. वसुदेव हिण्डी
८०. श्री ऋषभदेव भ० का चरित्र—आ० अमोलख ऋषि
८१. नारद पुराण
८२. विष्णु पुराण
८३. गरुड़ पुराण
८४. मार्कण्डेय पुराण
८५. लिंग पुराण
८६. प्राचीन भारत—गंगाप्रसाद एम० ए०
८७. संस्कृति के चार अध्याय—रामधारीसिंह दिनकर
८८. तिलोय पण्णत्ति
८९. नियम सार, तात्पर्य वृत्ति
९०. व्हायस ऑव अहिंसा, भगवान् ऋषभ विशेषाङ्क
९१. ब्रह्म भाष्य—आचार्य शंकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९२. बौद्ध धर्म दर्शन
९३. बौद्ध धर्म क्या कहता है ?—कृष्णदत्त भट्ट
९४. औपपातिक सूत्र
९५. णाया धम्मकहाओ
९६. मोन्योर मोन्योर विलियम संस्कृत इङ्गलिश डिक्शनरी
९७. धम्मपद
९८. अथर्ववेद कारिका
९९. दर्शन अने चिन्तन—पं० सुखलाल जी
१००. जैनप्रकाश—दिल्ली
१०१. जैनधर्म और दर्शन—पं० मुनि नथमल जी
१०२. जैन दर्शन के मौलिक तत्त्व—पं० मुनि नथमल जी
१०३. निशीथ सूत्र-भाष्य (चूर्णि सहित)—उपाध्याय अमर मुनि जी
१०४. अष्टाह्निका : कल्प-सुबोधिका—(गुजराती : सारा भाई नवाब)
१०५. गुरुदेव श्री रत्नमुनि स्मृति ग्रन्थ, आगरा
१०६. आजकल
१०७. अणुव्रत (पाक्षिक) दिल्ली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org